# जिन राहों से गुज़रा मैं

डॉ. पी. के. जैन

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

**BLUEROSE PUBLISHERS**
India | U.K.

Copyright © Dr. P. K. Jain 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-270-9

Cover design: Shariq Ansari
Typesetting: Simran Maurya

First Edition: May 2026

# आमुख

हर व्यक्ति की जिन्दगी एक ऐसा कैनवास है जिस पर हर लम्हा अपना रंग बिखेरता रहता है। कुछ रंग ऐसे होते हैं जो हल्के होते हैं और समय की गर्द जिनको बहुत धुंघला कर देती है और कुछ रंग इतने चटकीले होते हैं कि काल के कपाल पर अमिट हो जाते है। मैं भी अपवाद नहीं हूँ, बल्कि एक कदम और आगे बढ़ कर यह स्वीकारने में मुझे कोई गुरेज़ नहीं है कि मेरे कैनवास पर रंग बिखेरने वाला ब्रुश भी मेरा था और रंगों का चयन भी मेरा था। अब जैसा भी जीवन चित्र उभर कर आया है उसके लिए मैं स्वयं ही उत्तरदायी हूँ। उसी चित्र को शब्दों के माध्यम से कागज पर उकेरने का एक तुच्छ प्रयास है ''जिन राहों से गुजरा मैं''।

जीवन में होश सम्हालने के दौर से संध्याकाल के वन्दन तक जितनी भी भूली बिसरी यादें मस्तिष्क के कौने में पड़ी थी कलम का स्पर्श पाकर इस पुस्तक के माध्यम से जीवन्त हो गई है। उम्र के इस पड़ाव पर जब कि 70 वर्ष पूरे हो रहे हैं, जिन राहों का भी चयन मैंने किया उसमें कभी मेरा अनुभव था, कभी बचकाना पन, कभी समाज का निर्देशन या मेरी अज्ञानता लेकिन हर राह ने मेरी स्मृति में जगह बनाई और इसी का शाब्दिक दस्तावेज आपके हाथ में है।

ये आत्मकथा मेरी ही नहीं, मैरे जैसे हजारों युवकों की है जिन्होंने अपना बचपन और किशोरावस्था में एक द्वन्द के दौर को जिया है। कभी आर्थिक क्षेत्र में, कभी सामाजिक क्षेत्र में या कभी अस्तित्व को बचाने में। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि रास्ते के अटकाव, भटकाव या अलगाव के बावजूद कथा ने मंजिल को ओझल नहीं होने दिया। मुझे विश्वास है कि पुस्तक का हर खुलता हुआ पृष्ठ, हर पड़ाव आपको जोड़े रखने में समर्थ होगा। एक लेखक के तौर पर मैंने पूरा प्रयास किया है कि बिना किसी दुराग्रह तथा दुर्भावना के लेखन धर्म का निर्वाह कर सकूं।

मेरा यह मत है कि आत्मकथा में आत्मा की आवाज को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने का साहस लेखक में होना चाहिये, अन्यथा आत्मकथा की आत्मा मर जाती है।

मैं उन सभी मित्रों, सहयोगियों और परिवारजनों का अत्यन्त आभारी हूँ जिनका सहयोग एवं समर्थन मेरी सक्रिय जिन्दगी में हर पल मिला।

वो हजारों छात्र जो पिछले पांच दशकों के मेरे शैक्षणिक एवं अकादमिक जीवन यात्रा में मेरे अस्तित्व का सबसे बड़ा सम्बल बने और जिन्होंने अपने शिष्यत्व का कुशल निर्वाह कर मेरा कद बढाया, मैं उन सभी को नमन करता हूँ। आज भी हर दिन कक्षा में जा रहा हूँ, छात्रों से संवाद कर रहा हूँ। कक्षा में पूछा गया हर प्रश्न मुझे एक नये वैचारिक धरातल को छूने का अवसर देता है। यह सब कुछ बहुत कम लोगों के भाग्य में होता है। इसे मैं ईश्वर का आशीर्वाद मानता हूँ।

मेरे तीनों बच्चे प्रज्ञा, प्राची और प्रतीक तथा पुत्रवधु निष्ठा जिनका भावनात्मक समर्थन और जुड़ाव हर पल मेरे साथ रहता है, उनके प्रति भी मै अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

किसी यज्ञ की पूर्णाहूति के बाद जो आत्म संतोष का आभास होता है वही भाव इस पृष्ठ को लिखने में हो रहा है। किसी लेखन कार्य का विचार करना सबसे सरल कार्य है। उसे प्रारम्भ करना कुछ मुश्किल कार्य है। प्रारम्भ किये गये कार्य की गति और लय बनाये रखना और भी कठिन कार्य है और उस कार्य को सन्तुष्टी के साथ पूर्ण कर लेना सबसे कठिन कार्य है। मुझे खुशी है कि सभी पड़ावों को पार कर ये कार्य अपनी अन्तिम परिणिति में पहुंच सका। सभी पाठकों का हर सुझाव, हर टिप्पणी मुझे अधिक संवरने में सहायक बनेगा, कुछ नया सोचने में मददगार होगा।

**धन्यवाद**

**1 जून 2026**
**डॉ.पी.के. जैन**

# अनुक्रमणिका


1. आंख खुलने से खड़े होने तक ....................................................1

2. होश सम्भालने का दौर ............................................................11

3. काल खण्ड जिसने चलना सिखाया ............................................17

4. कॉलेज की जिन्दगीः सुनहरे क्षण और बेशकीमती यादें ................27

5. विश्वविद्यालय अध्यापन की दुनिया में..........................................38

6. नया मंजर, नई दृष्टि ..................................................................53

7. कक्षा के भीतर के अनुभव ...........................................................69

8. वो घटनाएँ जिन्होंने छाप छोड़ी .................................................73

9. अलगाव और बिछोह का काल ....................................................88

10. वो भयानक दौर..................................................................... 102

11. संध्याकाल का वन्दन............................................................. 112

# 1.
# आंख खुलने से खड़े होने तक

भारत का राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 8 जो दिल्ली से मुंबई को जोड़ता है, सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे व्यस्त राजमार्ग है और सबसे महत्वपूर्ण राजमार्ग भी है क्योंकि वह राष्ट्रीय राजधानी को वित्तीय राजधानी (मुंबई) से जोड़ता है। दिल्ली से मुबई की कुल दूरी 1428 कि.मी. है। इसके साथ ही यह राजमार्ग भारत के महत्वपूर्ण शहरों गुडगांव, जयपुर, अजमेर, उदयपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत से होकर गुजरता है। करीब आधा राजमार्ग, (मुख्यतः गुडगांव से अहमदाबाद तक) अरावली पर्वतमाला के साथ–साथ चलता हैं। इस अरावली पर्वतमाला ने भारत में सबसे लम्बे समय तक और सबसे अधिक विदेशी आक्रान्ताओं को झेला है। आठवी शताब्दी में अरबी आक्रान्ता मोहम्मद बिन कासीम इस पर्वत माला में आया जिसको बप्पा रावल ने पराजित किया। दसवी शताब्दी (वर्ष 1001 से 1025 तक) मे मुहम्मद गजनी ने कई बार इस पर्वतमाला की रियासतों पर आक्रमण किया। बारहवीं शताब्दी में मुहम्मद गौरी ने भी कई बार इसी क्षेत्र में आक्रमण किया जिसका सामना चौहान राजवंश से हुआ जिसके प्रमुख महान यौद्धा पृथ्वीराज चौहान थे। तराई के दोनों युद्ध जिसमें पृथ्वीराज चौहान का सामना मुहम्मद गोरी से हुआ इसी अरावली पर्वतमाला से सटे हुए क्षेत्र है। चौदहवी सदी (सन् 1301) में उल्लाउद्दीन खिलजी और महाराणा हमीर के बीच रणथम्भोर का युद्ध, हो या वर्ष 1303 में उल्लाउद्दीन खिलजी और रावल रतनसिंह के बीच चित्तौड़गढ़ दुर्ग का युद्ध या सन् 1576 का अकबर की सेना और महाराणा प्रताप के बीच हल्दी घाटी का युद्ध अरावली पर्वतमाला हमेशा से विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रही जिसका प्रमुख कारण हैः यही पर्वत माला सम्पूर्ण दक्षिण भारत के द्वार खोलती है। दक्षिण भारत का तो प्रवेशद्वार है ही लेकिन उत्तर भारत के गंगा–यमुना के मैदानी भाग पर भी इस पर्वतमाला का बड़ा अहसान रहा है। अरावली पर्वतमाला न होती तो सम्पूर्ण गंगा–यमुना

का मैदानी उपजाऊ भाग पूर्ण रेगिस्तान बन चुका होता। गौरवशाली इतिहास तो इस पर्वतमाला का है ही लेकिन प्रकृति की दरियादिली भी इस क्षेत्र में आसानी से दिखाई दे जायेगी। ऊँची पर्वत चोटियां जो कि हिमालय से भी पुरानी हैं, खूबसुरत झीलें, विश्वस्तरीय भव्य किले, महल, बावड़िया, बरसाती झरने, जैव विविधताः सब कुछ है जो आपको पूर्णरूप से सम्मोहित करने में सक्षम है।

इसी राष्ट्रीय राजमार्ग पर अजमेर शहर से करीब 130 कि.मी. दूर एक छोटा सा कस्बा है भीम। यह कस्बा राजमार्ग के साथ–साथ सड़क पर ही फैला हुआ है। भीम वैसे तो एक छोटा कस्बा है पर यहां पर आपको मेन राजमार्ग पर 24 घण्टे काफी चहल पहल दिखाई देगी जिसका प्रमुख कारण है, यहां आने जाने वाली बसें सभी यहां रूकती है, यात्री गण होटल में चाय पीते हैं, खाना खाते है, विशेषरूप से जयपुर व उदयपुर के बीच सफर करने वाले यात्रियों के लिए एक मिड–वे है। दो तीन अच्छी होटलें हैं। इन होटलों के बाहर मिलेगी बसों और कारों को लम्बी लम्बी लाइने जिनकी नम्बर प्लेट देखकर आपको लगेगा कि इस छोटे से कस्बे की होटलों में सम्पूर्ण भारत के निवासी लम्बी यात्रा की थकान मिटाने कुछ देर विश्राम करनेरूकते हैं।

जब आप जयपुर या अजमेर से भीम कस्बे में प्रवेश करते है तो राजमार्ग से दांये हाथ की तरफ आपको एक छोटी सी सकरी सड़क दिखाई देगी। ज्यों ही आप राजमार्ग छोड़ कर इस सकरी सड़क पर आयेंगे अपको दो मिनट बाद ही ऐसा लगेगा कि आप इक्कीसवी सदी का भारत छोड़कर उन्नीसवी सदी के भारत में पहुंच गये है। मैं महात्मा गांधी के उस कथन से पूरी तरह सहमत हूँ जिसमें उन्होंने कहा था अगर आप भारत को देखना चाहते हैं तो इसके गांवों को देखिये। इससे आगे बढ कर एक बात और जोड़ना चाहूंगा कि अगर आप असली भारत को देखना चाहते हैं तो राष्ट्रीय राजमार्गों से हट कर किसी भी तरफ एक कि.मी. पतली सकरी सड़कों या पगडंडियों पर चले जाइये, वास्तविक भारत के दर्शन हो जायेंगे।

भीम राजमार्ग से छोटी सकरी सड़क पर आते ही आदिवासी पुरुष, महिला और बच्चों की भीड मिल जायेगी। छोटे–छोटे ठेले जिन पर पास के गावों से लाई सब्जियां, चूडियां, बिन्दियां, काच, कंघे, ग्रामीण

महिलाओं के श्रृंगार प्रसाधन आदि लदे हुए मिल जायेंगे। इसी सड़क पर पुरानी जर्जर सरकारी बसें और प्राइवेट जीपें भी मिल जायेगी। ये सारी बसे और जीपें सवारियों की इन्तजार में खड़ी हैं और सवारियों को लेकर 14 कि.मी. का सफर तय करके एक ही गांव में जायेगी। उस गांव का नाम है टॉडगढ। यह सफर विशेष रूप से बरसात में तो किसी रोमांच से कम नहीं है। सर्पाकार सड़क हर दो मिनट बाद यूटर्न लेती सड़क, झरनों से बहता पानी, छोटे–छोटे खेत और उनसे जुड़ी पगडंडिया, खेतों में काम करती महिलाऐं और आम के पेडों के नीचे बंधी गायें। आपको ऐसा लगता है कि एक दूसरी दुनियां में पहुंच गये है। करीब चालीस मिनट की यात्रा के बाद आप पहुंचते है टॉडगढ में। गांव की बनावट किसी को आकर्षित करने में कोई कसर नहीं छोड़ती। आधा गांव नीचे बसा है, आधा गांव कुछ चढाई पर बसा है। छोटा सा बस अड्डा है जहां एक या दो रोडवेज की बसें और कुछ जीपें खड़ी रहती है। पिछले करीब 60 वर्षों से मैं इस बस अड्डे को ऐसा ही और इसीरूप में देख रहा हूं। इस बस अड्डे से सीधी खड़ी चढाई है जिस पर उबड़ खाबड़ पत्थरों से बनी सड़क है। वह चढाई जहां समाप्त होती है वो टाड़गढ़ का ऊपरी गांव है। इस हिस्से में करीब 60 घर हैं। इसी उपरी हिस्से में ही एक छोर पर हायर सैकेण्डरी स्कूल है, डाकघर है। हायर सैकेण्डरी स्कूल के पास खड़े होकर हरी–भरी अरावली पर्वतमाला को बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है। टाडगढ को राजस्थान का मिनी माउन्ट आबू भी कहते हैं क्योंकि यहां की जलवायु माउन्ट आबू से काफी मिलती है। समुद्रतल से टाडगढ की ऊंचाई, माउन्ट आबू से मात्र 5 मीटर नीचे है।

कुछ स्थानों को कुदरत और इतिहास दोनों ही इतना सम्मान देते है कि पता ही नहीं लगता कि दोनों में से कौन ज्यादा मेहरबान है। यही स्थिति टाडगढ़ गांव के साथ है। उपरी टाडगढ के किसी भी छोर पर चले जाऐं और नीचे निहारें तो प्रकृति की असीम दरियादिली के नजारों से आपका साक्षात्कार हो जायेगा। लाजवाब हरियाली, सुन्दर तालाब, कुऐं, जैव विविधता का अनुपम संगम, पहाड़ों के बीच टेढे, मेढ़े सर्पाकार रास्ते, पास के गावों तक जाने वाली पगडंडिया जो कि टॉडगढ को जोडती है बरार, बराखन, बुजारेल, डांसरिया, सरूपा, गाफा, कातर घाटी और दुघालेश्वर महादेव जैसे स्थानों से। कुछ

मिलाकर बरसात में तो अल्मोडा और कोसानी का छोटा रूप यहां देखा जा सकता है। पूरे टॉडगढ गांव की आबादी करीब चार हजार है। टॉडगढ़ का नाम एक अंग्रेज कर्नल टॉड के नाम पर खा गया है, वैसे यहां का पुराना नाम बरसावाड़ा था जिसे बरसा नाम के गुर्जर जाति के व्यक्ति ने बनाया था। टॉडगढ़ व आसपास के लोग काफी बहादुर और अच्छी कद काठी के लोग रहे है। अग्रेजी शासनकाल में पूरा राजस्थान अग्रेजों के नियंत्रण में आ गया लेकिन टाडगढ को अंग्रेज अपने नियंत्रण में नहीं ले सके। जब किसी भी तरह से टाडगढ़ के वीर रावत और गुर्जर लोग अग्रेजों के नियंत्रण में नहीं आ पाये तो सन् 1821 में नसीराबाद छावनी से कर्नल टॉड अग्रेजों के राजनैतिक प्रतिनिधि बनकर यहां बातचीत करने आये थे। सबसे बड़ी बात है कि यह टॉडगढ़ गांव इतिहास के किसी भी काल खण्ड में किसी भी राजा या महाराजा के अधीन नहीं रहा। आज भी टॉडगढ और आसपास के गांवों में पुरुषों की आबादी का एक बहुत बडा भाग भारतीय फौज में है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान टॉडगढ क्षेत्र से 2600 सैनिक लडने के लिए गये उनमें से 124 सैनिक शहीद हो गये। उस विश्वयुद्ध के दौरान किसी एक गांव से युद्ध में गये सैनिकों की सबसे अधिक संख्या पूरे देश में टाडगढ से ही थी। कई घरों में अपको वीरांगना मा और वीरांगना बहु एक साथ रहते हुए मिल जायेगी। टॉडगढ़ और आसपास के वातावरण को देखकर कर्नल टॉड ने अपनी एक ऐतिहासिक और कालजयी पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है –Annals and Antiques of Rajasthan। कैसी अजीब बात है कि एक विदेशी हमारे देश में आया और हमें हमारा इतिहास बता गया और इतनी बढिया पुस्तक हमारे इतिहास पर लिखा गया। चाहे कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म या मजहब या राष्ट्रीयता का हो उसने कोई अच्छा काम किया है तो उसकी सराहना की जानी चाहिए। इसी टॉडगढ में करीब 100 वर्ष पूर्व मेरे दादाजी जिन्हें मैं हमेशा दादासा कहता था जिनका नाम था गुलाब चन्द्र जी महनोत (जन्म 1904) अपने पूरे परिवार के साथ पास के एक गांव डांसरिया से यहां आकर बस गये। टाडगढ से डांसरिया की दूरी करीब 4 कि.मी. है। पुराने समय में 5 या 10 कि.मी दूर किसी दूसरे बड़े गांव में जाकर बस जाना ही माइग्रेशन की परिभाषा में आता था और वही मेरे दादासा ने भी किया। टॉडगढ़ आने के बाद उन्होंने बड़े

परिश्रम के साथ हिन्दी मिडिल और फिर उर्दु मिडिल की परीक्षा पास की। इस पढाई के लिए उन्हें अजमेर जाना पड़ता था। आज के 100 वर्ष पहले ये शैक्षिक योग्यता बहुत बडी मानी जाती थी जब साक्षारता का प्रतिशत मात्र 1 प्रतिशत था। आज दिल्ली से लन्दन या न्यूयार्क जाना उतना कठिन नहीं है जितना कि सौ वर्ष पूर्व टॉडगढ से अजमेर जाना। वर्तमान में टाडगढ से अजमेर की दूरी करीब 120 कि.मी. है और आप आसानी से हाइवे पर यह दूरी 3 घण्टे में पूरी कर सकते है लेकिन करीब 90 वर्ष पूर्व दादासा को यह दूरी पूरी करने में करीब डेढ़ से दो दिन लग जाते थे। करीब आधा रास्ता पैदल तय करना और बाकी रास्ता घोडे पर बैठकर तय करना बड़ा दुष्कर कार्य होता था। हर छोटे बड़े कस्बे की बाहरी दीवारें और दरवाजे होते थे जो रात होते ही बन्द हो जाया करते थे। जैसे शाम को 7 बजते ही ब्यावर शहर के मुख्य द्वार चांग गेट एवं मेवाडी गेट बन्द हो जाते थे। ऐसे में उस कस्बे में प्रवेश करना या आगे जाना संभव नहीं होता था। अलग–अलग कस्बों की अलग–अलग रियासतें और अलग–अलग चूंगी नाके होते थे जिन्हें शुल्क देकर आगे का रास्ता तय हो जाता था। छोटी आयु में ही उनका विवाह हो गया। उनका ससुराल टाडगढ के पास ही बरार गांव में था जो कि टाडगढ से 6 कि.मी. दूर था जिसे पगडण्डी के सहारे पैदल ही पार किया जाता था। टाडगढ में ही दादासा ने एक दो मंजिला बनवा लिया। धीरे–धीरे उन का परिवार विस्तृत होता गया और कुल 7 पुत्र और 2 पुत्रियों का कुनबा उनके परिवार में जुड़ गया।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना चाहूंगा। सन् 1857 की क्रान्ति के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का धर्म परिवर्तन करवाने हेतु इसाई पादरियों का एक बड़ा दल जिसमें डाक्टर, नर्स व स्कूल के शिक्षक थे भारत भेजा। इस दल का बहुत बड़ा हिस्सा मुंबई बन्दरगाह उतरकर ब्यावर तथा टाडगढ़ आया। इस दल का नेतृत्व विलियम रॉब कर रहे थे। ये दल सन् 1925 तक टाडगढ़ भीम, ब्यावर आदि क्षेत्रों में काफी सक्रिय रहा और हजारों लोगों का उस समय धर्मान्तरण किया गया। चूंकि दादासा मिडिल स्कूल तक पढाई कर चुके थे इसलिए उस दल की नजर दादासा पर भी पडी और उन्हें धर्मान्तरण करवाने के काफी प्रयास भी किये गये। कमजोर आर्थिक

स्थिति होने और भारी भरकम प्रलोभनों के बावजूद कभी ऐसे प्रस्तावों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। यह उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रमाण था। मैं कई बार सोचता हूं कि अगर धर्म परिवर्तन कर दादासा गुलाबचन्द से गुलाब मसीह हो जाते (जैसा उन्हें प्रलोभन देते समय कहा गया) तो मैं स्वयं भी आज पी.के. जैन के स्थान पर प्रदीप मैसी बन चुका होता। एक व्यक्ति का गलत कदम आने वाली पीढ़ियों को गर्त में डाल देता है। इसीलिए कहा जाता है ''लम्हों ने खता की है, सदियों ने सजा भुगती है।''

उस समय आठ–दस बच्चों का परिवार होना आम बात थी। चूंकि महत्वाकाक्षांओं का बडा पहाड़ जिन्दगी में लोग ढोते नहीं थे। पैसा और किसी भी कीमत पर पैसा, ऊँचा पद, शौहरत और शान भरी जिन्दगी जैसी चीजें दिमाग में बसी नहीं थी, इसलिए थोड़े से पैसों और सीमित साधनों से खुशियों भरी जिन्दगी जीने का हुनर उस पीढी ने सीख लिया था। दादासा के सात बेटों में सबसे बड़े मेरे पिताजी थे जो एक शिक्षक थे, दूसरे व तीसरे बेटे भी शिक्षक बन गये, चौथे बेटे ने आगरा में एक छोटी सी फैक्ट्री खोल ली लेकिन आर्थिक समस्याओं की वजह से वो फैक्ट्री चल नहीं पाई, पांचवें बेटे ने एम.एस.सी. तक पढाई की लेकिन इस पढाई को चालू रखने के लिये उसे अपने मामा से कर्ज लेना पडा। बाकी के दो बेटे बैंगलोर व्यवसाय करने चले गऐ। दोनों पुत्रियों का भी समय पर दादासा ने विवाह कर दिया। वैसे 1940 के दशक में दादासा टाडगढ से अजमेर आकर बस गये । ये उनके जीवन का दूसर बडा माइग्रेशन था जो टाडगढ से उनको करीब 130 कि.मी दूर ले कर आ गया। इसकी वजह थी, अजमेर की एक स्कूल में उनको अध्यापक की नौकरी मिल गई साथ ही अजमेर के ही प्रतिष्ठित मैयो कॉलेज में भरतपुर हाउस में उनको तत्कालीन राज परिवार के बच्चों को पढाने के लिए प्राइवेट ट्यूशन भी मिल गई।

अजमेर में ही एक बहुत बड़ी हवेली में उन्होंने एक किराये का मकान ले लिया। जिस गजमल गली में उन्होंने किराये का मकान लिया, उस गली और आसपास के क्षेत्र में ऐसी कई बड़ी–बड़ी हवेलियां थी जो पुराने समय के सेठों और रजवाडों की हवेलियां थी। आज भी वों हवेलियां ज्यों की त्यों है। अपने जीवन के करीब 60 वर्ष उसी हवेली में व्यतीत किये। उस हवेली में 16 परिवार रहते थे। कुल

मिलाकर 75–80 व्यक्ति रहते थे और उन सबके बीच केवल 6 टॉयलेट थे। सारे टायलेट पुराने तरीके से बने हुए थे जिनको साफ करने के लिए मैला ढोने वाले हरिजन आते थे। किसी भी परिवार में झाड़ू पौचा या बर्तन माजने के लिए कोई नौकर या बाई नहीं आती थी। दादासा का बडा आकर्षक व्यक्तित्व था। सवा छह फीट की लम्बाई, सिर पर हमेशा साफा बांधना और हाथ में बेंत होती थी।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उन बीती घटनाओं का बड़ा महत्व होता है जो उसने अपने बचपन में देखी थी और जो अवचेतन मस्तिष्क में आकर ठहर गई है। वैसे मेरा जन्म स्थान तो जवाजा का है। ये जवाजा भी उसी राष्ट्रीय राज मार्ग न. 8 पर है जहां भीम है। भीम से करीब 30 कि.मी. है। पिताजी की नौकरी जवाजा में थी इसलिऐ मेरा जन्म भी जवाजा में हुआ। छोटा सा गांव है जवाजा। मुख्य सड़क के दूसरी तरफ खूबसुरत तालाब है, सैंकडों बतखें उसमें तैरती और मछली पकड़ती नजर आयेगी। सुबह जब सूरज की किरणें उस तालाब पर पडती है तो झिलमिलाता पानी अनूठी छटा बिखेरता है। उसी तालाब के एक कोने पर अग्रेजों के जमाने का डाक बंगला है। राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया जब भी उदयपुर से जयपुर जाते थे तो रात्रि विश्राम इसी डाकबंगले में किया करते थे। जवाजा से मेरी बचपन की यादें इसलिए नहीं जुडी कि मैं बहुत छोटी उम्र में टाडगढ और फिर टाडगढ से आगे निकल गया। हां अजमेर की यादें आज भी मेरे जहन में ताजा है जिन्हें मैं हमेशा ताजा रखने का प्रयास कर रहा हूँ। क्योंकि पिछले 70 वर्षो की मेरी जीवन यात्रा में यादों का पिटारा अजमेर से ही भरना चालू हुआ और फिर भरता ही गया।

मैंने अजमेर में दादासा के उस भरे पूरे परिवार को एक साथ रहते देखा है। मेरे 6 चाचा और चाचियां और उनके बच्चे एक उस हवेली के एक छोटे से कौने वाले मकान में जिसमें जिन्दगी के सारे काम बिना किसी परेशानी के बिना लाग लपेट के हो रहे है। कोई चाचा बाहर नल से पानी लाकर टंकी भर रहा है, कोई सब्जी लेने गया है, कोई चाचा मुझे या किसी और भतीजे को लेकर अस्पताल गया है, दो चाचियां रसोई में खाना बना रही है, एक चाची बर्तन माज रही है, एक कपडे धो रही है। सभी अपना–अपना काम बडे सन्तोष और आराम से कर रहे है। शाम को जब दादासा भोजन कर रहे होते तो कोई एक

चाचा उनके पास बैठे रहते थे। मेरे पिताजी समेत जितने भी चाचा घर में होते थे, शाम का भोजन सभी एक साथ एक ही थाली में करते। रसोई नीचे थी कोई भी चाची चूल्हे पर गर्म–गर्म रोटी सेककर उपर भिजवाती रहती थी और मेरे दादासा सामने पलंग पर बैठकर सभी को भोजन करते देखते रहते।

शाम का भोजन करने के बाद गर्मियों में सभी लोगों का एक ही कार्यक्रम होता थाः दौलत बाग (वर्तमान में सुभाष उद्यान) की सैर करना। सभी बच्चे, चाचाजी, चाचीजी आदि पैदल निकल पड़ते थे। उस समय का दौलत बाग जहां लम्बे–लम्बे हरे–भरे लॉन जहां सैकड़ों परिवार शाम को बैठे रहते थे, बच्चे खेलते रहते थे। थोडा सा आगे जाकर एक कंआ था वहां कुछ लोग पानी पिलाने वाले बैठे रहते थे। केवडे की हल्की–हल्की खुशबू वाला पानी ऐसा कि प्यास और मन दोनों तृप्त हो जाते थे। उसके आगे जाकर कुछ सीढियां जहां से आनसागर की बारादरी पर चढ़कर झील का खूबसुरत नजारा और शाहजहां के जमाने की पत्थरों पर की गयी कारीगरी किसी भी कवि ह्दय को प्रकृति पर लिखने के लिये प्रेरित कर दे। बारादरी के ठीक सीधे हाथ की तरफ पहाड़ी पर बजरंगगढ जहां पर हनुमान मंदिर है सीढियों पर चढते उतरते सैकडो व्यक्ति दिखते रहते थे। आज जो वर्तमान में सुभाष उद्यान है उस पुराने दौलत बाग के सामने तो कूडा पात्र के समान ही लगता है। करीब एक–डेढ घण्टा बिताने के बाद हम सब लोग वापस घर आते तब तक कोई एक व्यक्ति जो घर पर होता, छत पर पानी का छिडकाव कर सभी के लिये बिस्तर कर देता। एक तरफ सारे आदमी दूसरी तरफ सारे घर की औरतों के सोनेका इंतिजाम होता था। पास में एक छोटी सी पानी की मटकी और फिर थोडी देर तक हंसी, मजाक, दिन भर की बातें या आस–पड़ोस की चर्चा होती। कभी–कभी ऐसा भी होता कि सभी गहरी नींद में सो रहे है कि अचानक बरसात आना चालू हो गई। ऐसे में सभी लोग अपने–अपने बिस्तर लेकर वापस नीचे की ओर दौड़ पडते।

रात को ठण्डे बिस्तर पर सोते हुये, बच्चे खुले आसमान में तारे देखने लगते और घर का कोई बड़ा सदस्य बताता कि ये तारा ध्रुव तारा है, ये सप्त ऋषि मण्डल है, आज ये तीज का चांद है या पूर्णिमा का चांद है। सोते–सोते पडोस की छत से किसी ट्राजिस्टर से बिनाका

गीत माला के के गीतों की आवाज आती तो कभी गीतों की धुन पर या कभी अमीन सयानी की आवाज सुनकर रात गुलजार हो जाया करती थी।

उस समय 1000–1200 कि.मी. की यात्रा भी एक बहुत बड़ा सपना होता था। वर्ष 1967 की बात है मेरे एक चाचाजी को बैंगलोर उनके मामा के साथ व्यवसाय शुरू करने जाना था। उस समय अजमेर से बगलौर की यात्रा में पूरे दो दिन लग जाते थे। अजमेर से एक ट्रेन सुबह 9 बजे चला करती थी वो काछीगुडा तक जाती थी वहां से फिर बैंगलोर के लिए दूसरी ट्रेन पकडनी पड़ती थी। अजमेर से बैंगलोर के लिए चाचाजी को रेल्वे स्टेशन पर विदा करने के लिए रिश्तेदार पडौसी और अन्य करीब 30–40 लोग आ गये। सभी ने माला पहना कर उन्हें विदा किया और कई लोगों की आंखों में आंसू भी थे। समय का बदलाव देखिय कि किसी व्यक्ति को रेल में विदा करते समय लोगों की आंखों में आंसू आ जाते थे, लेकिन अब व्यक्ति दुनिया से विदा हो जाये तब भी उतने आंसू नहीं आते। करीब 10 दिन बाद बैंगलौर से चाचाजी का पोस्टकार्ड आया कि मैं बगलोर पहुंच गया हूँ।'' ये सारी घटनाऐं या जीवन शैली शायद आज की पीढी को अविश्वसनीय लगे या उनकी सोच से भी परे हो, लेकिन मैने स्वयं ने उस दौर को देखा है, जिया है, खुशी और सन्तोष के साथ उस वक्त को बिताया है।

ऐसा नहीं है कि पिताजी या उनके भाइयों में झगडा न होता हो। कई बार मैंने भाइयों को आपस में झगडते भी देखा है लेकिन आपसी रिश्तों और सम्मान की उस सीमा को कभी नहीं लांघा गया जहां जाकर व्यक्ति एक–दूसरे के चेहरे से भी नफरत करने लगते हैं। इससे भी बड़ी बात यह थी कि निम्न मध्यम वर्गीय परिवार था, पैसे की बहुतायत नहीं थी, इसलिए बड़े झगड़े होने की संभावना नगण्य थी।

पिछले कई वर्षो से मेरा टाडगढ और अजमेर से सम्पर्क नहीं के बराबर है, लेकिन इनके नाम से आज भी मेरा दिल धडकने लगता है। उस गांव या अजमेर शहर से अजीब सा लगाव महसूस होता है। टाडगढ गांव के 90% मूल निवासी व्यवसाय या धन्धे के सिलसिले में पलायन कर बैंगलोर, मैसूर, चेन्नई, हैदराबाद जैसे शहरों में बस गये

है। घरों में बड़े बड़े ताले लगे हैं जो कि अपनों के लौटने की इन्तजार करते रहते हैं। इसी संदर्भ में मुझे दो लाइने याद आ गईः

सूनी हो गई मेरी गांव की गलियां अब तो
ख्वाहिशों ने सबको शहर भेज दिया।

महान शायर मुन्नवर राणा ने अपना गांव छोड़ कर दूर जाने वालों के नाम एक लम्बी नज्म मुहाजिर नामा लिखी जो पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हुई, उसके दो शेर देखियेः

कहानी का ये हिस्सा आज तक सबसे छुपाया है
कि हम मिट्टी की खातिर अपना सोना छोड आये हैं
नई दुनिया बसा लेने की इक कमजोर चाहत में
पुराने घर की दहलीजों को सूना छोड आये हैं।

मेरे दादासा, दादीसा पिताजी और माताजी चारों ही इस दुनिया में नहीं हैं लेकिन मुझे इस बात की खुशी है कि मैंने कलम के जरिये ही सही लेकिन उनके और मेरे गांव टाडगढ की यादों को ताजा किया और संघर्ष के दौर में अजमेर में बिताये गये समय को रेखांकित करने का प्रयास किया। मेरे दादासा, दादीसा, पिताजी और माताजी को हार्दिक श्रद्धाजली –

मेरे जैसे हजारों लोगों ने अपनी जीवन की यायावरी में पोस्टकार्ड से इस्टाग्राम तक का समय देखा है। समय को बदलते देखा है। बदलते युग के साथ पुरानी मान्यताओं, धारणाओं और विश्वासों को खण्डित होते देखा है। आज की बुद्धिमानी को कल की मुर्खता में बदलते देखा है। समय की गति न्यारी है और बहुत तेज भी है। दादासा के सातों बेटों ने जिसमें मेरे पिताजी भी शामिल है मेरे देखते देखते अलग–अलग आशियाना बना लिया, ठीक उसी तरह जिस तरह चिड़ियां के बच्चों के पंख लगते ही फुर्र से उड़ जाते है, ओर फिर वो चिड़िया और चिड़ा दोनों अकेले रह जाते है। मेरे पिताजी और उनके 2 छोटे भाई (मेरे चाचाजी) अब इस दुनिया में नहीं है। दादासा के परिवार में बाकी चार बेटे और दो बेटियां सभी सत्तर और अस्सी के दशक में विचरण कर रहे है।

# 2.
# होश सम्भालने का दौर

अजमेर से 60 कि.मी. दूर एक कस्बा है विजयनगर। मेरी आँख जवाजा और टॉडगढ में खुली लेकिन होश सम्भालने का दौर विजयनगर से ही शुरू होता है। वर्तमान में विजयनगर ब्यावर जिले में स्थित है लेकिन उस समय पर अजमेर जिले का दक्षिणी भाग का अन्तिम गांव हुआ करता था। खारी नदी के किनारे पर बसा यह बड़ा शान्त और साफ–सुथरा कस्बा था। वर्ष 1962 में पिताजी जो शिक्षा विभाग में कार्यरत थे – उनका स्थानान्तरण विजयनगर हो गया तो हम सभी सपरिवार विजयनगर आ गये। विजयनगर और गुलाबपुरा दो कस्बे जो एक दूसरे से 3 कि.मी. की दूरी पर स्थित हैं उनके बीच सिर्फ खारी नदी है। यह नदी बनास नदी की उप नदी है और टौंक जिले में जाकर बनास नदी में विलय हो जाती है, जो आगे जाकर स्वयं चम्बल नदी में विलीन हो जाती है। उस समय विजयनगर की जनसंख्या केवल 4000 थी। विजयनगर की स्थापना वर्ष 1919 में तत्कालीन मसूदा के राव साहब विजय सिंह जी ने की थी। यह कस्बा भी राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 48 से जुड़ा हुआ है।

पहली बार पहली कक्षा में मेरे पैर 1962 में पड़े जब मुझे सथाना बाजार की एक सरकारी प्राथमिक पाठशाला में प्रवेश दिलवाया गया। बैठने को नीली टाटपट्टियाँ (उस समय की सरकारी स्कूलों की पंच लाइन हुआ करती थीं – नीली टाट पट्टियों वाली स्कूल) और सामने बैंच। पूरी स्कूल की हर कक्षा की यही हॉल था। थोडी दूर पर एक लडकियों की स्कूल थी वो भी ऐसी ही थी। उस कस्बे में कोई दूसरी प्राइवेट स्कूल नहीं कोई इंग्लिश मिडियम स्कूल नहीं, कोई दूसरा विकल्प नहीं। मजदूर का बच्चा, अधिकारी का बच्चा, धनवान बाप का बच्चा, सभी को उन्हीं दोनों स्कूलों में से किसी एक में आना था। यह विजयनगर का दृष्य नहीं, सम्पूर्ण भारत का परिदृश्य था।

21 वीं सदी में भारत में सामाजिक समरसता या समावेशी समाज का कितना ही ढोल पीटें, उसकी नींव एसी स्कूलों से ही पडेगी और उसका भाव भी बच्चे के दिमाग में उसी क्षण जाग जायेगा जब वो अपने अगल–बगल में पूरे समाज को अपने साथ बैठा देखेगा।

स्कूल बैग में एक स्लेट और स्लेट पैंसिल होती थी। यही कुल पढने लिखने का सामान होता था। आज हम किताबों का बोझ हल्का करने की चर्चा करते हैं, उस समय बोझ होता ही नहीं था। छोटा सा विजयनगर कस्बा उस समय एक सीधी लम्बी सड़क के दोनों ओर बसा हुआ था। उसके एक किनारे पर रेल्वे स्टेशन था, और दूसरे किनारे पर सरकारी अस्पताल था और उन दोनों किनारें के बीच की दूरी करीब–करीब 2 कि.मी. थी, और उन दोनों किनारों के बीच सारे कस्बे की हर तरह की गतिविधियाँ सम्पन्न होती थी। सब्जी मण्डी, अनाज मण्डी, हायर सैकेण्डरी स्कूल, बस स्टैण्ड, हलवाई की दुकान, पान वाले, हेयर कटिंग सैलून सभी कुछ उस 2 कि.मी लम्बी सड़क पर सिमट कर आ जाता था। उस समय विजयनगर का रेल्वे स्टेशन ऐसा था जिस पर पूरे दिन में कुल मिलाकर तीन ट्रेने आती थी इसलिये रेल्वे स्टेशन रात को और सुबह लोगों के घूमने फिरने के काम आता था। स्टेशन पर सिर्फ मीटर गेज की लाइन थी। वैसे उस समय 90 प्रतिशत देश के रेलवे मानचित्र पर मीटर गेज की लाइने ही थी। लेकिन वर्तमान में विजयनगर पूरे देश के साथ रेलमार्ग से जुड़ा है। दिल्ली, मुंबई, सूरत, अहमदाबाद, कोलकत्ता, जैसे प्रमुख शहर विजयनगर से सीधी रेलसेवा से जुडे है। विजयनगर से 100 कि.मी. दूरी पर किशनगढ़ हवाईअड्डा है और राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 48 के द्वारा 6 लेन हाइवे से जुड़ा हुआ है।

हम जिस किराये के मकान में रहते थे, बड़ा खुला–खुला था। मकान के बीच में एक कुंआ था जिसकी मुंडेर पर एक बाल्टी रस्सी के साथ हमेशा बंधी रहती थी। जब जरूरत हो, बाल्टी को कुऐं में डालना, फिर झांक कर देखना कि बाल्टी भरी या नहीं? फिर बाल्टी को मुंडेर तक खीच कर लाना एक मनोरंजक काम होता था। हम चार लोग परिवार में थेः पिताजी, माताजी, मैं और मेरी एक छोटी बहिन कल्पना। विजयनगर से कभी बाहर जाना होता तो हमारे पास केवल दो विकल्प होते थे। पहला अजमेर दादासा, दादीसा के पास चले जाना या हर

गर्मियों की छुट्टी में ननिहाल चले जाना जो हम हर वर्ष चले जाते थे। ये स्थिति मेरे परिवार की नहीं बल्कि आस पास के सभी परिवारों की होती थी कि बच्चे अपनी मम्मी के साथ छुट्टियाँ शुरू होते ही ननिहाल चले जाते थे। मेरा ननिहाल बड़ी सादडी, (जो चितौड़गढ़ जिले में स्थित है) में था। कई वर्षों तक मैने देखा परीक्षा समाप्त होते ही अगले दिन मै, कल्पना और मम्मी बड़ी सादडी के लिए रवाना हो जाते। वहां जाने का रास्ता भी उन दिनों बड़ा लम्बा होता था। विजयनगर से हम रात को 11 बजे ट्रेन में सवार होते जो हमे दूसरे दिन सुबह निम्बाहेडा उतारती थी। उन दिनों ट्रेनों में कोई A.C. कोच नहीं होते थे। सारे कोच एक जैसे थर्ड क्लास के कोच होते थे। कोई रिजर्वेशन नहीं होता था। रात में जो डिब्बा खुला हुआ मिल तथा उसमें चढ़ जाते थे। सीटें सारी पहले से भरी होती थी। हमारे पास जो लोहे का सन्दूक होता था उसी को गैलेरी में रखकर उस पर हम तीनों लोग बैठ जाते थे। चाहे यात्रा कैसी भी हो, ट्रेन में यात्रा करने का रोमांच अलग होता था। ट्रेन में काला कोयले का इंजिन लगा होता था जो कोयले के छोटे–छोटे कणों को पीछे हवा मे छोड़ता रहता था। सुबह 7 बजे जब हम निम्बाहेडा स्टेशन पर उतरते थे तो बालों में और चेहरे पर काले–काले कोयले के कण चिपके नजर आते थे।

निम्बाहेडा से फिर हमें बड़ी सादडी के लिए बस में सफर करना होता था। उस समय निम्बाहेडा से बडी सादडी की बस यात्रा करीब 2 घण्टे लेती थी। करीब 10 बजे तक हम लोग ननिहाल पहुंच जाते थे। वहां का नजारा हम लोगों के लिए बड़ा अद्भुत होता था। घर में घुसते ही दांयी तरफ गाय, भैसों के रहने की जगह होती थी जहां पर हमेशा एक या दो गायें बंधी मिलती थी। हमें देखते ही जोर–जोर से रंभाने लगती थी। सबसे पहले हम गायों से ही मिलने जाते थे। कोई भी एक मामीसा गायों के स्थान पर या तो सफाई कर रहे होते गोबर के कण्डे बना रहे होते। दूसरे मामीसा रसोई में काम कर रहे होते। रसोई में एक काली मिट्टी की हाण्डी में चूल्हे पर दूध गर्म हो रहा होता था, दही–बिलोने का काम हो रहा होता था। दही से मक्खन निकालने के बाद मामीसा हम बच्चों की हथेली पर खाने के लिये मक्खन रख देते थे। ननिहाल का आधा घर पक्का था लेकिन रसोई और एक दो कमरों पर केलू लगे होते थे। जब रसोई में खाना बन रहा होता तो रसोई का

धुंआ केलू की छत से छन कर ऊपर हवा में निकलता रहता था, वो दृश्य मुझे बड़ा सुन्दर लगता था। कुछ ही देर में उस मौहल्ले में और नजदीकी रिश्तेदारों में ये बात पहुँच जाती किरूक्मण (मेरी मम्मी) आई है और सभी परिचित और रिश्तेदार लोग हमसे मिलने आ जाते थे। हर रोज एक व्यक्ति खेत से कुछ सब्जियाँ भी लेकर आ जाता था। ननिहाल में लम्बा, चौडा खेत था और कई आम के पेड़ थे, गर्मी की छुट्टियों का मौसम आम का मौसम भी होता है। देसी, छोटे, चूंसने वाले आम टोकरों में भरकर आते थे। दिन के समय घर में जितने भी बच्चे होते थें वो सब एक साथ आम खाते थे।

उन सभी बच्चों को एक साथ बिठाकर आम खिलाने का काम मेरे एक मामीसा करते थे। एक बहुत बड़े बरतन में या परात में तीस, चालीस आमों को पानी में रख दिया जाता था फिर सभी बच्चों के कपड़े खोल दिये जाते थे और केवल चड्डी बनियान पहन कर सारे बच्चे उस आम के बर्तन के चारों तरफ बैठ जाते और आम चूंसते रहते थे। जब सारे आम खत्म हो जाते तो सभी बच्चे रंग–बिरगे हो चुके होते इसलिए फिर सभी को नहलाया जाता था। हर दो तीन दिन में एक बर मम्मी हमें लेकर तालाब पर चली जाती थी। वहीं नहाने, धोने का कार्यक्रम रहता था। बड़ा सुन्दर तालाब था, घाट भी उतने ही सुन्दर थे। पुरुषों और महिलाओं के घाट अलग–अलग थे। तालाब पर मम्मी की कई पुरानी सहेलियां भी मिल जाती थी। बड़ी आत्मीयता के साथ वहां मुलाकात होती थी। घर के पास एक बावड़ी थी, जो अभी भी है लेकिन उस समय उस बावड़ी पर अलग ही रौनक रहती थी। एक छोटी मामीसा हमेशा घर का पीने का पानी स्वयं बावड़ी से भरकर लाती थी। एक साथ दो घड़े सर पर रख कर हल्का सा घूंघट निकाल कर जब वो कई औरतों के साथ समूह में चलती थी बड़ी आकर्षक लगती थी। मामासा की एक दूकान थी, जनरल स्टोर था वो भी काफी अच्छा चलता था।

जब से मैने होश सभाला, मुझे याद है एक–दो वर्षो को छोड़कर हमेशा हम लोग गर्मी की छुट्टियों में ननिहाल ही चले जाते और पांच–दस दिन के लिए नहीं बल्कि पूरे 2 माह के लिए। पूरा गर्मियों का अवकाश वहीं निकलता था। यह क्रम वर्ष 1962 (जब से मुझे याद है) से 1973 तक निर्बंध गति से चलता रहा। मेरे सारे परीक्षा परिणाम

हमारे ननिहाल जाने के बाद घोषित होते और हमें पोस्टकार्ड द्वारा परिणामों की जानकारी पिताजी देते थे। दसवी और ग्यारहवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की सूचना मुझे टेलीग्राम द्वारा दी गई। बड़ी सादड़ी में उस समय बहुत ही कम घरों में टायलेट की सुविधा होती थी। सुबह होते ही सैकड़ों लोग और महिलाऐं लोटा लेकर जंगल में निकल पड़ते थे और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के साथ–साथ लोग आपस में कई विषयों पर चर्चा भी कर लेते थे, या यूं कहें कि सामाजिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने का समय भी वही हुआ करता था।

सुबह करीब दस बजे मेरे मामासा दुकान जाने के लिए घर से निकल पडते थे। करीब दस मिनट तक वो घर के बाहर दरवाजे पर खड़े रहते थे और अच्छा शकुन देखकर घर से दुकान के लिए प्रस्थान करते थे। मामासा के निर्देश पर एक आइसक्रीम वाला रोज–करीब 2 बजे हमें आइसक्रीम देकर जाता था। शाम को 5 बजे के आसपास मामासा की दुकान पर सम्भ्रान्त व्यक्तियों का जमावडा लगता और देश–विदेश के विषयों पर चर्चाओं का दौर करीब एक घण्टा चलता था। रात में सभी लोग घर की छत पर बिस्तर डालकर सो जाते थे। पूरे घर में केवल दो कमरों में ही पंखे लगे थे। जब छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद वापस लौटने का वक्त होता तो एक दो दिन पूर्व मम्मी के दोनों हाथों में मेहन्दी लगाने का कार्यक्रम होता था। यह मेहन्दी का कार्यक्रम सभी मामीसा मिलकर करते थे और दूसरे दिन सुबह सभी मामीसा देखते थे कि मेहन्दी का रंग हाथों पर कितना चढ़ा है।

आज के दौर में दो महीने ननिहाल में जाकर रहने जितना समय बच्चों के पास नहीं बचा, रिश्तों की वैसी गर्माहट नहीं बची, सम्बन्धों को पूरी सादगी और सरलता के साथ जीने का वो हुनर भी नहीं बचा। पैसे के ढेर पर बैठना और हर रोज उस ढेर को और ऊँचा बनाने के ख्वाहिश ने हमें एक ऐसी दुनिया में ढकेल दिया है जिसमें सिर्फ अहंकार, तनाव और बोझ बने रिश्तों के भार को हम ढोये जा रहे है और इसी को सफलता का नया मापदण्ड मान लिया गया है। पिछले पृष्ठों में अपने दादासा के परिवार और यहां ननिहाल के बारे में विवेचन किया गया। यह सिर्फ दो परिवारों की बात नहीं है। यह उस समय के सम्पूर्ण समाज का दर्पण है। हर परिवार अपनी सारी जिन्दगी बहुत ही सहज और सरल तरीके से व्यतीत कर रहा है। घर परिवार के सारे

दायित्व निपटाये जा रहे है। बच्चों की पढ़ाई, लिखाई हो रही है, शादी–ब्याह हो रहे हैं। माँ–बाप के पुराने कर्जो को चुकाया जा रहा है। मेहमानों की मेहमाननवाजी हो रही है, तीज त्यौहारों को पूरे उल्लास के साथ मनाया जा रहा है लेकिन सब कुछ सहजता के साथ आंकठ प्रेम में डूब कर। ऐसा लगता है, जीवन पूरा जीवन्त होकर अपने सम्पूर्ण स्वरूप में निखर रहा है।

विजयनगर का प्रवास कुल मिलाकर तीन वर्ष (1962 से 1965) का रहा और उन तीन वर्षों में मेरी आंखों ने नये मंजर देखना शुरू किया, कानों ने कहीं और अनकहीं को सुनना प्रारम्भ किया और आने वाले समय के लिये कुछ यादों को सहेजना शुरू किया।

# 3.
# काल खण्ड जिसने चलना सिखाया

विजयनगर में 3 वर्ष का प्रवास पूरा होते होते पिताजी का स्थानान्तरण केकड़ी हो गया। विजयनगर से एक ट्रक में सामान लेकर 3 घण्टे की दूरी तय कर हम लोग केकडी पहुंच गये। केकड़ी, अजमेर कोटा के रास्ते में एक प्रमुख कस्बा है। अब वह जिला बन चुका है। केकड़ी में उस समय हैजा फैल रहा था, प्रतिदिन काफी लोग मर रहे थे। जिस मकान में हमारा सामान उतर रहा था उसी के अगले मकान में उसी दिन एक व्यक्ति की हैजे से मौत हो गई थी जिसकी शवयात्रा निकल रही थी। आज हैजा, मलेरिया, चेचक जैसी बिमारियों पर पूरा नियंत्रण पा लिया गया है लेकिन 60–70 वर्ष पूर्व तक हजारों लोग प्रतिवर्ष इन बिमारियों की भेंट चढ़ जाते थे। उनके स्थान पर अब कोरोना, स्वाइन फ्लू और डेंगू जैसी बिमारियों ने अपना साम्राज्य जमा लिया है। केकड़ी में चौथी कक्षा में मेरा स्कूल प्रवेश हुआ। स्कूल का नाम पायलट प्राथमिक स्कूल था। यह बात वर्ष 1965 की है। उस स्कूल के हैड मास्टर सा. श्री निवास जी पाराशर थे। वो धोती कुर्ता पहनते थे। उस समय कई अध्यापकों का और काफी कॉलेज प्रोफेसरों का भी यहीं पहनावा होता था। केकड़ी बड़ा साफ सुथरा और खुला–खुला कस्बा था। नगरपालिका आर्थिक दृष्टि से काफी सम्पन्न थी उसका प्रमुख कारण अनाज, जीरा, सौंफ, मूंग की बहुत बड़ी मण्डी केकडी थी और नगरपालिका को चूंगी के माध्यम से काफी आमदनी होती थी। कई बार जब मैं स्कूल जाता था तो रास्ते में बाजार के दोनों और अनाज, जीरा और सौफ के ढेर लगे रहते थे।

केकडी का मेरा प्रवास काल कुल 8 वर्ष रहा और उन 8 वर्षों में केकडी ने मुझे बहुत कुछ दिया या यूं कहूं कि मुझमें बहुत कुछ उड़ेला जिसका स्वाद मैंने जीवन भर लिया। कुछ लेने के लिए दिल्ली, मुंबई

या लंदन जैसे बड़े शहरों में जाने की जरूरत नहीं होती, अगर पात्र में ग्रहणीयता है और भीतर का दरवाजा खोलने की इच्छा है तो सही दिशा, दृष्टि या दर्शन कहीं से भी मिल जायेंगे।

पांचवी कक्षा तक की पढाई पायलट स्कूल में पूरी करने के बाद छठी कक्षा में पास की ही हायर सैकेण्डरी स्कूल में प्रवेश ले लिया। आर्थिक दृष्टि से निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों की जो आर्थिक स्थिति होती है उसी स्थिति से मेरा परिवार भी जूंझता था, बस एक अन्तर था कि अन्य परिवारों में जहॉ बच्चों की संख्या तीन या चार होना उस समय आम बात थी, मेरे परिवार में हम दो भाई–बहन ही थे। मनोवैज्ञानिक कहते है कि 5–7 वर्ष की उम्र में ही बच्चों के भविष्य की दशा और दिशा तय होने लगती है, और उसे तय करने में मेरे गुरुजनों और पिताजी का बहुत योगदान रहा है। कुछ मेरी आदतें जो उस समय बनने लगी वो आज तक ज्यों की त्यों है। मेरे पिताजी ने एक बार जब मैं छठी कक्षा का छात्र था तब बताया कि अखबार में क्या पढना चाहिये और कैसे पढना चाहिए। उस समय उन्होंने बताया कि किसी भी अखबार का सम्पादकीय पृष्ठ बड़ा महत्वपूर्ण होता है और वो ध्यान से पढना चाहिए। उसके बाद किसी भी अखबार का सम्पादकीय पृष्ठ पढना मेरी नियमित आदत बन गई। अखबार भले ही बदलते गये पर सम्पादकीय पढने की आदत आज तक वैसी ही है। नवभारत टाइम्स के तत्कालीन संपादक श्री अक्षय कुमार जैन तथा साप्ताहिक ब्लिटज के संपादक श्री आर. के करंजिया के लेखन ने मेरी दृष्टि को नया विस्तार दिया और सोच को विस्तृत किया।

नवीं तथा दसवीं कक्षा तक आते आते मैने Times of India भी पूरी गंभीरता से पढना चालू किया जिसके दो फायदे मुझे जीवन पर्यन्त मिले पहलाः हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा को ठीक से समझने व संवाद करने में मैंने सहजता का अनुभव किया। दूसरा संपदकीय पृष्ठ पर जो कई बड़े–बड़े लेखक एवं स्तंभकार जो नियमितरूप से लिखते थे उनको पढ़ कर मुझे वैचारिक एवं चिन्तन की दृष्टि से परिपक्व होने का अवसर मिला। जिन समाचारपत्रिय लेखकों ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया उनमें प्रमुखतः श्री गिरी लाल जैन, दिलीप पादगांवकर, इन्दर मल्होत्रा, वीर सांघवी आदि प्रमुख है। पत्र–पत्रिकाओं में खुशवन्त सिंह के लेखन एवं Illustrated weekly पत्रिका के सम्पादक केरूप में उनकी भूमिका ने मुझे काफी प्रभावित किया। मासिक पत्रिका कादम्बिनी के

संपादक केरूप में श्री राजेन्द्र अवस्थी और साप्ताहिक धर्मयुग के संपादक केरूप में श्री धर्मवीर भारती के लेख जो मैने सत्तर के दशक में पढ़े आज भी मुझे गुदगुदाते है। समय का चक्र और पाठकों की बदलतीरूचि का आलम यह रहा कि धर्मयुग और कादम्बिनी जैसी पत्रिकाऐं बन्द हो गई। बच्चों की पत्रिकाऐं जो कभी हम किराये पर लाकर पढा करते थे बन्द हो गई। गीताप्रेस गोरखपुर जैसी लब्ध प्रतिष्ठित प्रेस जिसे श्री हनुमान प्रसार पौद्दार ने अपने खून–पसीने से सींचा था वो बन्द हो गई। पिताजी भी थोडे समय बाद मेरी उसी स्कूल में स्थानान्तरित होकर आ गये थे इसलिए स्कूल की लाइब्रेरी से कई नामी लेखकों की पुस्तकें वो भी घर लेकर आते थे जिन्हें पढने का सौभाग्य मुझे मिल जाता था। धर्मवीर भारती, शरत बाबू, विमल मित्र, अमृत लाल नागर, आचार्य चतुर सेन जैसे कालजयी लेखकों को पढना मेरे जीवन का सुनहरा क्षण मानता हूँ और ये सब नौवी या दसवी कक्षा तक हो गया था। बहुत संभव है आज की पीढी के नौजवानों ने ये नाम सुने भी नहीं हो। क्योंकि उस दौर में सोशल मीडिया या इलैक्ट्रोनिक मीडिया नाम की कोई चीज नहीं थी इसलिऐ प्रिंट मीडिया ही पढने लिखने या मनोरंजन का माध्यम था। आज भी मेरा ये मानना है कि वैचारिक दृष्टि से प्रिंट मीडिया जितना समृद्ध और परिपक्व है उतना कोई भी दूसरा मीडिया नहीं है। इलैक्ट्रानिक मीडिया भी नहीं। इलैक्ट्रानिक मीडिया आपके दिल की धड़कन को बढाने का काम करता है जब कि प्रिंट मीडिया दिल को सुकून देता है।

मेरे केकडी प्रवास की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि रही जिसका मै जिक्र करना आवश्यक समझता हूँ। केकडी नगर परिषद प्रांगण में प्रति वर्ष तेजाजी के मेले के अवसर पर एक विराट कवि सम्मेलन आयोजित किया जाता था। वो प्रथा अब भी है। उस कवि सम्मेलन में देश भर के ख्याति प्राप्त कवियों को आमंत्रित किया जाता है। केकडी प्रवास के अठ वर्षों के दौरान मैने उस समय के करीब–करीब सभी लब्ध प्रतिष्ठित कवियों का काव्यपाठ बहुत करीब से सुना उनमें मुख्यतः गोपालदास नीरज, संतोषानन्द, माया गोविन्द, बालकवि बैरागी, वीरेन्द्र मिश्र, रामावतार त्यागी, रामधारी सिंह दिनकर आदि प्रमुख हैं। उन सभी कवियों को देखकर और सुनकर मैने संवाद कला के कई महत्वपूर्ण गुर सीखे जिसने मेरी डिबेटिंग और अभिव्यक्ति की कला को निखारने में मदद की।

मैंने कई बार सोचा कि मुझे जीवन में स्कूल से ज्यादा मिला या कॉलेज से? हर एक बार एक ही जवाब आया कि मुझे दोनों ही जगह से भरपूर मिला। स्कूल एक ऐसी जगह है जहां मिट्टी से सोना बनाया जाता है जब कि कॉलेज में उसी सोने पर पालिश कर उसे चमकाया जाता है और अच्छी पैंकेजिंग की जाती है ताकि वो बाजार में अच्छी तरह से बिक सके। केकड़ी की जिस राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय से मैंने ग्यारहवी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की वो एक अच्छी प्रतिष्ठित स्कूल केरूप में पूरे राज्य में प्रसिद्ध थी। मेरी संवाद शैली को निखारने और मंच के भय को दूर करने में केकडी की स्कूल का बहुत बड़ा योगदान रहा है। मैं जब नवीं कक्षा का छात्र था तब मैंने हिन्दी डिबेट कम्पीटिशन में टुर्नामेन्ट में केकड़ी विद्यालय का प्रतिनिधित्व किया और विजेता रहा और फिर जिला स्तर पर भी विजेता रहकर अजमेर जिले का प्रतिनिधित्व मैंने राज्य स्तर पर किया जो कि मेरे स्कूल जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। अगले वर्ष भी मैंने इसी रिकार्ड को छुआ। मेरी यह सोच है कि बच्चे को सिर्फ किताबी कीडा बनाकर 90 या 95 प्रतिशत अंकों का हार उसके गले में लटका कर हम कोई बड़ा कार्य नहीं कर रहे है। किताबी ज्ञान किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का केवल 10% भाग ही है, जबकि हम हमारी 90% ऊर्जा उस 10% किताबी ज्ञान को प्राप्त करने पर लगा रहे हैं।

उस समय स्कूलों में सांस्कृतिक कार्यक्रम, टुर्नामेन्ट और एन.सी.सी. ये तीनों ही गतिविधियाँ इच्छुक छात्रों के लिए मुख्य आकर्षण होते थे। टुर्नामेन्ट में किसी दूसरे शहर में जाना एक उत्सव जैसा कार्यक्रम होता था। सारे खेलों की प्रतियोगिता किसी दूसरे शहर की स्कूल में होती थी जिन्हें जोनल टुर्नामेन्ट कहते थे, वहां के विजेताओं के लिए आगे जिला स्तरीय टुर्नामेन्ट और जिला स्तर के विजेता खिलाडी या प्रतियोगी फिर राज्य स्तरीय टुर्नामेन्ट में हिस्सा लेते थे। सभी खिलाडी अपने सोने, बिछाने का सामान साथ लेकर जाते थे, साथ में एक प्लेट और कटोरी जो खाना खाने के काम आती थी। किसी भी स्कूल के कमरों में सारे खिलाडी और प्रतियोगी ठहर जाते थे। साथ गये अध्यापक भी वहीं अपना बिस्तर बिछा देते थे। सारे खिलाड़ियों का खाना भी एक साथ बनता था जिसे स्कूल का कोई चपरासी ही बनाता था। खाने में दाल, रोटी और एक सब्जी होती थी बस। सुबह के नाश्ते में पतली सी चाय और दो ब्रेड पीस। जब कोई टीम मैच खेलकर

आती उसके बाद भोजन का दृश्य देखने वाला होता था। सारे खिलाड़ी एक साथ खाने पर टूट पड़ते और खिलाड़ी अपनी थाली में कम से कम 6 रोटी, बड़े कटोरे में दाल और भरपूर सब्जी ले लेते। इसी बीच कोई खिलाड़ी अपने थेले से निकाल कर तीन चार प्याज लेकर आ जाता और हाथ की मुक्की से तोड–तोड़कर थोडा–थोडा प्याज सभी को दे देता। ये हालात देखकर साथ आये अध्यापक जी आकर कहते भाई सब ध्यान से खाना, कल वापस मैच खेलना है। ''उस खाने का स्वाद आज भी मैं मिस करता हूँ और इसी तरह के दृश्य मैने एन.सी. सी. कैम्प में भी देखे है।'' मेरे डिबेट कम्पीटिशन प्रायः रात में होते थे और मेरी स्कूल के सारे खिलाडी रात में फ्री रहते थे, इसलिए मेरे इवेन्ट में सभी बैठते थे। हमारे साथ गये इन्चार्ज अध्यापक जी सारे खिलाड़ियों को पहले ही सिखा देते थे की प्रदीप की कौन सी लाइन पर तालियां बजानी है। जब मैं अजमेर जिले की सबसे बड़ी स्कूल तापदड़ा स्कूल या मोइनिया इस्लामिया स्कूल या सैंट एन्सलम में बोलने खड़ा होता तो मेरे जैसे बच्चे के लिए तो बड़ा अवसर होता था, लेकिन मेरे से ज्यादा उत्साह मेरे साथी खिलाड़ियों और टीम इन्चार्ज को रहता था। मैं कई बार सोचता हूँ कि मेरे स्कूल के वो साथी जो हर बार जब मैं बोलने के लिए खड़ा होता था, पूरे दिल से मेरा उत्साह बढ़ाते थे, शायद उन्हीं साथियों की वजह से मैं बहुत कुछ हांसिल कर पाया हूँ उस जीवन में। टुर्नामेन्ट में जब कोई खिलाडी या टीम विशेष जीत दर्ज कर लेती उस दिन शाम को विशेष पार्टी होती थी जिसमें अध्यापक जी हर खिलाड़ी को दूध पिलाने हलवाई के यहां ले जाते थे। मैने उस दौरान देखा कि कई गरीब खिलाड़ी पूरे साल में टुर्नामेन्ट में ही दूध पी पाते थे। आज की पीढी के बच्चे जो सुविधा और लग्जरी की जिन्दगी के महासागर में गोते लगा रहे है; वो सोच भी नहीं सकते कि हमने बचपन की जिन्दगी को किस मस्ती और रोचक तरीके से जिया है।

एक बच्चे के जीवन निर्माण में स्कूल के अध्यापकों की कितनी महत्ती भूमिका होती है यह मैंने स्वयं महसूस किया है और देखा है। मेरी स्कूल के हिन्दी विषय के वरिष्ठ अध्यापक श्री पुरुषोतम दास जी बांगड जो साहित्यिक गतिविधियों के भी इंचार्ज थे, उन्होंने मुझे स्टेज पर खडा होना तथा डिबेट बोलना सिखाया। शुरूआत में वो स्वयं विषय सामग्री लिखकर लाते, मुझे याद करवाते फिर अकेला मुझे स्टेज

पर खड़ा कर मुझे सही बोलने व सही हावभाव का प्रदर्शन करने के लिए उत्साहित करते। जब भी मुझे किसी प्रतियोगिता या टुर्नामेन्ट में पुरस्कार मिलता तो वो सबसे पहले मुझे बधाई देने घर पर आते थे। उनके साथ मेरे पिताजी ने इस कला को विकसित करने में पूरा योगदान दिया। मैं कई बार सोचता हूं कि स्कूल में स्टेज पर आने के उस अवसर को अगर मैं नहीं भुनाता या शरमा जाता तो मेरी भावी जिन्दगी के कई महत्वपूर्ण अवसर मेरे हाथ से निकल जाते। जब भी कभी कहीं भी अंगुली रखने का अवसर मिले तो रख दीजिऐ, धीरे–धीरे पूरा हाथ रखने का अवसर भी मिल जायेगा। वर्तमान में प्राइवेट स्कूल छात्रों के सर्वागीण विकास के नाम पर लाखोंरूपये प्रतिवर्ष की मोटी फीस लेकर अपना घर भर रहे हैं लेकिन दूसरी तरफ आज भी सिर्फ 20–25 रूपये प्रतिमाह की न्यूनतम फीस लेकर सरकारी विद्यालय देश में लाखों बच्चों के सपनों को साकार कर रहे हैं। सरकारी नवोदय विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय, बिहार के खान सर, आनन्द कुमार की कोचिंग संस्थान जैसे कई शिक्षण संस्थान गरीब माँ–बाप के लिऐ एक आशा की किरण जगाते हैं। उस दौर के छात्र जीवन में कहीं भी कैरियर के प्रश्न को लेकर या भविष्य की संभावना को लेकर तनाव या कुंठा जैसी स्थिति नहीं थी। आज हर तीन दिन में देश में किसी नामी शिक्षण संस्था या कोचिंग संस्थान के छात्र की आत्महत्या की खबर आती है जो यह बताती है कि हम शिक्षा तो दे रहे हैं लेकिन खुश रहने का हुनर युवा पीढी को देने में असफल सिद्ध हो रहे है। खुशी का पैसे से या साधनों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वर्ष 1972 में जब मैं दसवी कक्षा का छात्र था तब मेरे घर पर बिजली का उपयोग प्रारम्भ हुआ। उसी वर्ष 1972 में पहला ट्राजिस्टर मरफी ब्रांड वाला आया। उस ट्राजिस्टर का उपयोग मुख्य रूप से आकाशवाणी के समाचार बुलैटिन सुनने के काम आता था। सुबह 8 बजे और रात को पौने नौ बजे का समाचार बुलैटिन सुनना बड़ा महत्वपूर्ण होता था क्योंकि देश, विदेश के बारे में समाचार जानने का यही एक माध्यम था।

सत्तर के दशक में आकाशवाणी न्यूज–रीडर केरूप में अशोक वाजपेयी और रामानन्द प्रसाद सिंह की आवाज घर–घर में गूंजती थी। जिनके घर में रेडियों या ट्राजिस्टर सैट नहीं होते थे वो लोग चौराहे वाली पान की दुकान पर चले जाते थे जहां पान खाते–खाते समाचार या बिनाका गीत माला मुफ्त में सुन लेते थे। वहीं पर राष्ट्रीय और

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर गहन चर्चा भी हो जाया करती थी। चुनाव के मौसम में वहीं हाथों हाथ ओपिनियन पोल भी हो जाया करते थे। हर स्कूल का एक प्रमुख खेल होता था जिसमें वो स्कूल और खेल प्रशिक्षक पूरी मेहनत करवाते थे। मेरी स्कूल का प्रमुख खेल हॉकी था जिसमें कि वहां से कई राज्य और राष्ट्रीय स्तर के खिलाडी देश को दिये। स्कूल के बच्चों में उस समय दो देशी खेल बड़े लोकप्रिय होते थेः पहला गुल्ली डंडा और दूसरा कंचे। हर गली मोहल्ले में बच्चे ये दोनों खेल पूरी तन्मयता से खेलते हुए नजर आते थे। बॉलीवुड नाम का शब्द उस समय तक मार्केट में नहीं आया था। फिल्मी हीरो, हिरोइनों की फोटो सिर्फ नाई की दुकानों पर पड़ी मेगजीन 'माधुरी' के पृष्ठों पर ही दिखाई देती थी। कोचिंग का धन्धा चालू नहीं हुआ था। अगर कोई बच्चा फेल भी हो जाता था तो घर में मातम जैसा माहौल नहीं होता था। महत्वाकाक्षों का ऊंचा पहाड़ लोगों की जिन्दगी में नहीं आता था। यहीं चीजे आम जिन्दगी को हल्की फुल्की रखती थी।

घर सारा काम मम्मी ही करती थी। सुबह पता नहीं कब मम्मी उठ जाती थी। जब तक मम्मी शारीरिक दृष्टि से सक्षम रही मैंने उन्हें कभी सुबह उठते हुए नहीं देखा। हमेशा वो सुबह काम करते हुए ही मिली। जब तक मैं उठता कोयले वाली सिगड़ी या चूल्हा जला कर उस पर दूध या चाय चढ़ा चुकी होती। एक बार चूल्हा जल जाने पर दिन के भोजन तक का सारा काम एक साथ निपटाया जाना अनिवार्य शर्त थी। सर्दियों में चूल्हे के सामने बैठकर गर्म गर्म तवे से उतरती रोटियां खाना या मक्की या बाजरे का दलिया खाना आज के फास्टफूड, जंकफूड या फूहड़ फूड से हजार गुना बेहतर और स्वास्थ्यप्रद था। ये सब कुछ सिर्फ खाने पीने में बदलाव ही नहीं बल्कि बदलती और दरकती जीवन शैली की यात्रा की भी कहानी है।

उस समय घर, परिवार के कई ऐसे काम होते थे जो अब समय की भेंट चढ़ गये हैं लेकिन इस देश के मेरे जैसे लाखों लोगों के उस समय के संघर्ष की दास्तान की गवाही देते हैं। मसलन सरकारी राशन की दूकान से गेंहू, शकर, कैरोसीन आदि सामान लाना। कभी गेंहू आये है तो गेंहू की लाइन में लगना, कुछ दिन बाद शक्कर आई है तो फिर उसी तरह लाइन में लगना या कैरोसीन की लाइन में लगना। उस समय फोन तो थे नहीं। एक बार तो यह जानने के लिऐ जाना कि सामान आया है या नहीं, फिर दूसरी बार सामान लेने जाना, फिर पता

लगता कि शक्कर आई थी लेकिन कम आई थी अतः खत्म हो गई अब 10–15 दिन बाद आयेगी। उस समय राशन के दुकान के मालिक की हैसियत बड़ी उंची थी। इन्सपैक्टर राज का वो चमकता हुआ हीरा था।

एक दूसरा महत्त्वपूण कार्य होता था चूल्हे में जलाने के लिये लकडी या कोयले की व्यवस्था करना। जिस तरह आज हम गेहूं की क्वालिटी, देखकर खरीदते है ठीक उसी तरह लोग लकडी और कोयले खरीदते थे। लकडी सूखी होनी चाहिए इसलिये मई–जून के महीने में साल भर की इकट्ठी लकडी तथा गोबर के कण्डे खरीद कर रखते थे। आज दिल्ली, मुंबई जैसे शहरों में लोग दो–तीन कमरों के फ्लैट में रहते है उतनी जगह में तो लोग वर्ष भर की लकड़िया व कण्डे खरीदकर रखते थे। उसी मई–जून के महीने में वर्ष भर का इकट्ठा गेंहू खरीदना और उसे साफ करना एक महत्वपूर्ण काम होता था। आटा खाना खरीदना किसी की सोच से परे था। कई घरों में मूंग, उडद, चना खरीद कर दालें भी घर पर ही बनाई जाती थी। पूरी दुनिया में गृहणी या पत्नि की इतनी व्यापक भूमिका कहीं नहीं थी जितनी हमारे समाज में थी। मैंने मेरी मम्मी को भी ये सारे काम बिना किसी परेशानी के शान्त भाव से करता देखा है।

जब हम राशन की दुकानों, गेंहू, शक्कर की लाइन में लगे पडे थे अमेरिका ने 1969 में चांद पर मानव भेजकर इतिहास रच दिया था। मैंने भी पड़ोसी के घर जाकर उसके रेडियों सैट पर इस महान इंसानी छलांग की कमेन्ट्री सुनी। किसी महान ऐतिहासिक क्षण का साक्षी बनना या किसी महान व्यक्तित्व को देख लेना भी आपको जीवन में बड़ा आनन्द देता है।

केकड़ी में रहते हुए मैने 1971 का भारत पाक युद्ध देखा। मुझे आज भी याद है पिताजी नियमितरूप से प्रातः 6.20 बजे BBC लंदन की हिन्दी न्यूज सुना करते थे। बरसों तक बी.बी.सी. पर श्री रत्नाकर भारती हिन्दी समाचार बुलेटिन पढा करते थे जिनका मैं भी बहुत बड़ा फैन था, उन्होंने ही 4 दिसम्बर 1971 को सुबह की बुलेटिन में भारत–पाकिस्तान युद्ध प्रारम्भ होने की न्यूज पढी। उस युद्ध की अन्तिम परिणिती एक स्वतंत्र राष्ट्र केरूप में बंगलादेश के निर्माण केरूप में हुई। भारतीय सैना का पराक्रम देश और पूरी दुनिया ने देखा जब 90,000 पाकिस्तानी सैनिको ने बंगलादेश में आत्म समर्पण किया।

इस पुस्तक को पढ़ने वाले बहुत से लोग वो होंगे जो 1971 के भारत–पाक युद्ध के समय पैदा भी नहीं हुए होंगे लेकिन मैं उस पूरे युद्ध का गवाह बना हूँ। मैं उस समय कक्षा दस का ही छात्र था लेकिन उस तक भी मैं राजनैतिक घटनाक्रमों का विश्लेषण अपने नजरिये से करने का साहस कर लेता था। जब दिसम्बर में युद्ध शुरू हुआ तो वैश्विक परिस्थितियाँ भारत के बिल्कुल प्रतिकूल थी। अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन पूरी तरह से भारत के खिलाफ थे, पाकिस्तान के पास अमरीकी हथियारों और टैंकों की क्षमता भारत से कही बेहतर थी। युद्ध शुरू होने के सप्ताह भर में अमरीका ने अपना सबसे शक्तिशाली 7 वां जहाजी बेडा हिन्द महासागर में भारतीय सीमा के नजदीक लाकर खड़ा कर दिया। भारतीय सेना ने उस समय के पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान में बंगलादेश) के भीतर घुस कर ढाका की तरफ बढ़ना शुरू किया। एक–एक शहर सिलहट, कौमिल्ला, चालना, चटगांव, मैमनसिंह, काक्स बाजार को फतह करते हुए ढाका की चारों और से घेराबन्दी की। राष्ट्रपति निक्सन जो उस समय विश्व के सबसे ताकतवर व्यक्ति थे, इन्दिरा गांधी से बिल्कुल खफा थे। देश में उत्साह, तनाव और जोश का ऐसा समागम मैंने आज तक नहीं देखा। आकाशवाणी पर हर घण्टे समाचार बुलेटिन प्रसारित हो रहे थे और उन समाचारों को सुनने के लिए बाजारों में दुकानों पर सैकड़ों लोगों की भीड़ खड़ी हो जाती थी। अशोक वाजपेयी और रामानन्द प्रसाद सिंह दोनों न्यूज रीडर आकाशवाणी से हर घण्टे समाचार पढ रहे थे। सारे देश के दिल में केवल एक प्रश्न थाः ढाका पर भारतीय सेना का कब्जा कब होगा। इसी बीच लोक सभा का विशेष सत्र बुलाया गया। विरोधी दल के नेता एक ही प्रश्न पूछ रहे थेः ढाका की घेराबन्दी होने के बावजूद, भारतीय सैना ढाका के भीतर घुस क्यों नहीं रही है? अटल बिहारी वाजपेयी, मधुलिमये, मीनू मसानी जैसे नेताओं ने कहा देश के लिए एक–एक घण्टा भारी हो रहा है। ढाका की स्थिति पर सरकार वक्तव्य दे। इस सारे माहौल के बीच दिनांक 16 दिसम्बर 1971 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने प्रातः 11 बजे संसद के विशेष सत्र में अपना भाषण शुरू करते हुए कहाः ढाका में पाकिस्तान के 92,000 सैनिकों ने बिना शर्त आत्मसर्म्पण कर दिया है और जनरल जगजीत सिंह अरोडा विशेष विमान से आत्म सर्म्पण के कागजों पर जनरल नियाजी के हस्ताक्षर करवाने ढाका पहुंच गये है। श्री मति इन्दिरा गांधी देश की

नहीं विश्व की एक महान नेता बन कर उभरी इस घटना के बाद। लोकसभा में इन्दिरा गांधी द्वारा दिया गया वो भाषण एक महान भाषण केरूप में हमेशा याद किया जायेगा, जिसे मैंने भी रेडियों के माध्यम से कई बार सुना है।

उस समय की सरकारी स्कूलों में छात्रों की परीक्षा के पहले विदाई कार्यक्रम भी आयोजित किया जाता था। वो विदाई कार्यक्रम इतना सुन्दर तरीके से आयोजित किया जाता था, ऐसे लगता था जैसे छात्र अपने परिवार से विदा होकर कहीं जा रहे है। अध्यापकों के, प्रधानाध्यापक के और कई छात्र–छात्राओं के भाषण होते, बीते और सहेजे गये पलों की यादे होती, हर छात्र के मस्तक पर तिलक और मुंह से गुड़ खिलाकर उन्हें विदा किया जाता। कई छात्रों और अध्यापकों की आंखे नम हो जाती थी। ये सब कुछ इसलिए हो जाता था कि शिक्षा का व्यावसायिकरण बिल्कुल नहीं था। गुरु शिष्य के सम्बन्ध 24 कैरट सोने की तरह शुद्ध थे।

कल्पना कीजिऐ उस दौर की, जब बेसिक फोन नहीं था, मोबाइल नहीं था, कम्प्यूटर नहीं था, गाडियां नहीं थी, हाइवे नहीं थे, बिजली नहीं थी, कुकिंग गैस नहीं थी, पैसा नहीं था, फास्ट फूड नहीं था, मैगी नहीं थी लेकिन फिर भी जिन्दगी थी, रिश्ते थे, मुस्कुराहट थी और सबसे बडी बातः अभाव क्या होता है इसकी जानकारी ही नहीं थी। इसको आप एक उदाहरण से और अधिक अच्छी तरह से समझ लेंगे। हम लोग केकड़ी में गुजराती मौहल्ले में किराये के मकान में रहते थे उसमें हमारे पास दो कमरे और एक रसोई थी लेकिन एक कमरा हमारा था, उसके पास दूसरा कमरा मकान मालिक का था, तीसरा कमरा मकान मालिक के छोटे भाई का था। एक दूसरा कमरा नीचे था वो हमारे पास था। रसोई कच्ची थी जिस पर केलू लगे थे और एक सामूहिक टायलेट घर से करीब 100 फीट की दूरी पर था और इन सारे हालातों के बीच मैने वर्ष 1973 में हायर सैकेण्डरी स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी से उतीर्ण कर अपने अगले पडाव पर चिन्तन चालू कर दिया।

# 4.
# कॉलेज की जिन्दगी: सुनहरे क्षण और बेशकीमती यादें

वर्ष 1973 में जीवन के सुनहरे आठ वर्ष और 16 वर्ष की उम्र पूरी करके, विद्यालय जीवन की सुखद यादें साथ लेकर भविष्य के सुन्दर सपने संजोते हुए केकड़ी कस्बे और स्कूल को अलविदा कहने का समय आ गया था। हायर सैकेण्डरी स्कूल परीक्षा में कॉमर्स विषय के साथ उस वक्त जबकि थ्योरी विषयों में बहुत कम अंक आते थें, 74% अंक लेकर मै कॉलेज में प्रवेश के लिए तैयार हो चुका था। केकड़ी स्कूल में जब मैं अपनी मार्कशीट और टी.सी. लेने गया तब स्कलू के प्रधानाचार्य श्री धर्म दास जी जयसिंघानी मुझे अपने साथ लेकर स्कूल के मुख्य बरामदे में ले गये और उन्होंने मुझे उस खूबसूरत बोर्ड की तरफ दिखाया जिसमें विद्यालय के वो छात्र जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये है उनके नाम लिखे थे। मैंने देखा हिन्दी डिबेट में राज्य स्तर पर विद्यालय का दो वर्षो तक प्रतिनिधित्व करने पर मरो नाम भी लिखा जा चुका था। प्रधानाचार्य जी ने कहा आने वाले कई वर्षो तक छात्र तुम्हारा नाम यहाँ पढेंगे और तुम्हें याद करेगे'' मेरे विद्यालय जीवन का वो सुखद पल था जिसे मैं स्कूल के प्रधानाचार्य व मेरे पिताजी के साथ शेयर कर रहा था।

कॉलेज प्रवेश के लिए मेरे पास सारे विकल्प खुले थे क्योंकि जयपुर कॉमर्स कॉलेज, अजमेर गवर्नमेट कॉलेज और ब्यावर एस.डी. गवर्नमेन्ट कॉलेज सभी जगह मेरा मेरिट में नम्बर आ रहा था। पिताजी का भी स्थानान्तरण केकडी से होने वाला था और संभावना थी कि ब्यावर हो जायेगा। ब्यावर का सनातन धर्म महाविद्यालय भी एक अच्छा कॉलेज था, केकड़ी स्कूल के कई छात्र जो वहॉ पढ रहे थे उनकी भी अच्छी रिपोर्ट थी। इन सभी बातों को देखते हुए मैंने ब्यावर कॉलेज में ही प्रवेश लेने का निश्चय किया।

ब्यावर की बनावट और बसावट किसी भी व्यक्ति को आकर्षित करने के लिए काफी है। पुराना शहर एक परकोटे के भीतर बसा है। इसी परकोटे के पांच प्रमुख द्वार है जिनके भीतर में शहर समाया हुआ है जिन्हें चांगगेट, अजमेरी गेट, मेवाडी गेट, नेहरू गेट और सूरजपोल गेट के नाम से जाना जाता है। शहर के सारे व्यावसायिक केन्द्र और मुख्य बाजार इन्हीं द्वारों के भीतर समाये हुए है। 19वीं सदी के प्रारम्भ में ब्यावर सिर्फ एक छोटा सा गांव था और एक सैन्य छावनी थी। एक अंग्रेज कर्नल जार्ज डिक्सन (1795–1857) ने छावनी के पास सटी हुई बंजर जमीन पर इस नये शहर की स्थापना की और वर्तमान में ब्यावर देश का एक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। कैसा संयोग है टाडगढ़ को भी अंग्रेज कर्नल जेम्स टॉड ने बसाया और ब्यावर को भी अंग्रेज कर्नल जार्ज डिक्सन ने बसाया। शहर के भीतर की सड़के, दुकाने, चौराहे, गलिया सभी कुछ साफ–सुथरी और व्यवस्थित नजर आती है। ब्यावर की तिलपट्टी ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ब्यावर की पहचान बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्यावर शहर तथा ब्यावर का कॉलेज मेरे लिए मील का पत्थर सिद्ध हुए। टॉडगढ़ जैसे छोटे गांव से निकलकर विजयनगर, बिजयनगर से फिर बडे कस्बे केकडी, और केकडी से निकलकर फिर बड़े कस्बे ब्यावर का मैंने उम्र के सोलहवें साल में दीदार किया। किशोरावस्था की उम्र लेकिन शहर ऐसा कि भटकने या पैर विचलित होने की कोई गुंजाइश नहीं। कस्बे के एक छोर पर बस स्टैण्ड और दूसरे छोर पर कॉलेज और उन दोनों छोर के बीच में उस समय पूरा कस्बा बसा हुआ था, जिसमें रेल्वे स्टेशन, दो पिक्चर हॉल, स्कूलें, सब्जी मण्डी, सब कुछ थे। ब्यावर में मैं नया था, ठहरने की व्यवस्था कुछ नहीं थी। पिताजी की एक परिचित मैडम जो बिजयनगर प्रवास से ही परिचित थी और उनसे पिताजी के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे उनका भी ट्रांसफर उस समय ब्यावर हो चुका था और वो एक मिडिल स्कूल की प्रधानाध्यापिका थी। पिताजी की इच्छा की वजह से मैं करीब दो माह उन्हीं मेडम के घर पर रहा लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वो एक सुखद अनुभव नहीं रहा। वो करीब 2 माह मेरे लिए निराशा और तनाव भरे रहे।

मैने इस बात को मम्मी से भी साझा किया लेकिन पापाजी के गुस्से के चलते कोई समाधान नहीं निकल रहा था। मेरी हमेशा से यह सोच

रही है कि बच्चे के संकेतों को समझिये वो कुछ इशारे कर रहा है उन्हें समझिये, सिर्फ मुखर ही नहीं मौन की भाषा को भी समझने का प्रयास कीजिऐ। उसे इतना मत हाशिये पर या किनारे पर ढकेल दीजिए कि सब कुछ सबके हाथ से निकल जाये। कुछ समय बाद पिताजी का भी ट्रॉसफर ब्यावर ही हो गया और इस समस्या का स्वतः समाधान हो गया। अन्यथा भविष्य में परिवार के लिए ये बड़ा मुद्दा बन सकता था। मेरे घर से कॉलेज की दूरी मात्र 2 किलोमीटर थी। एक पुरानी साइकिल थी जिसने मेरे कॉलेज जीवन के पूरे पांच वर्षों तक साथ दिया। ब्यावर कॉलेज का परिसर खूबसूरती और भव्यता का अनूठा मिश्रण था।

मुख्य सड़क से करीब 200 मीटर भीतर जाकर सीधे हाथ की तरफ कॉमर्स ब्लाक था, बांये हाथ की तरफ आर्टस तथा विज्ञान ब्लाक थी। सीधे हाथ की तरफ एक दो मंजिला सुन्दर लाइब्रेरी थी। लाइब्रेरी के सामने कॉलेज केन्टीन और उसके उपर इन्डोर हॉल जहा बैडमिटन और टेबल टेनिस के कोर्ट बने है। सामने विशाल खेल का मैदान जहां हॉकी, वालीबाल व फुटबाल के मैदान थे। कॉलेज की बिल्डिंग, उसका ले आउट, सुविधाऐं, खेलकूद के मैदान, केन्टीन सब कुछ इतने अच्छे व सुन्दर थे कि वहां मेरा व मेरे साथ कई छात्रों का कॉलेज में रहने का मन करता था जबकि आजकल या तो छात्र कॉलेज आते ही नहीं या फिर आते ही उनका वापस कॉलेज से भागने का मन करता है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कॉलेज आपको बुलाने और कॉलेज में रूकने के लिए प्रेरित करने में पूरी तौर पर असफल हो रहे है। यह सम्पूर्ण उच्च शिक्षा व्यवस्था पर एक तमाचा है। फिल्म अगर बेकार हो तो दर्शक भी बीच में ही थियेटर से उठकर आ जाते है।

किसी भी शिक्षण संस्था में व्यक्ति और व्यवस्था मिलकर व्यक्तित्व का निर्माण करते है। इन तीनों का अर्न्तसम्बन्ध बड़ा प्रगाढ होता है, लेकिन कौन, कब, किसको प्रभावित करता है, यह सब परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मुझे ब्यावर कॉलेज में व्यक्ति और व्यवस्था दोनों का भरपूर समर्थन मिला। जब मैंने कॉलेज में प्रवेश लिया तो प्रोफेसर जे. एल. बनर्जी प्रिंसिपल थे। अग्रेजी भाषा पर उनका अधिकार देखकर मैं दंग रह जाता था। धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने वाला ऐसा व्यक्ति मैंने आज तक नहीं देखा। करीब सवा छह फीट की लम्बाई सिल्क का

कुर्ता और धोती पहनकर जब वो भाषण देने खड़े होते तो मंच पूरी तरह उनका हो जाता था। जब भी मै किसी साहित्यिक गतिविधि में या डिबेट कम्पीटिशन में जीतकर आता तो मुझे अपने कमरे में बुलाते और अंग्रेजी मे ही बोलते ''हैलो माई बॉय आई लव यू माई बॉय, यू आर स्टार ऑफ माई कॉलेज।'' शब्दों का क्या जादू होता है यह मैने उनको देखकर ही जाना। उनका चेहरा प्रख्यात रंगकर्मी व फिल्मकार गिरीश कर्नाड से हूबहू मिलता था। कभी–कभी जीवन में ऐसे व्यक्तियों से मुलाकात हो जाती है, भले ही थोडी सी देर की हो या सिर्फ चेहरा ही देख लिया हो कि वो आपके दिल और दिमाग पर इस कदर छा जाते है कि पूरी जिन्दगी उनकी कैद से बाहर निकलना आपके लिऐ नामुमकिन हो जाता है। इसी संदर्भ में मुझे चार लाइने याद आती हैः

देख पालकी जिस दुल्हन की बहक गया हर एक बराती
जिसके द्वार उठेगा घूंघट उसके दिल पर क्या गुजरेगी

एक बार छूकर ही जिसने तन–मन चन्दन कर डाला
जो रोज छुआ जायेगा उसके दिल पर क्या गुजरेगी।

विवाह के पहले और कॉलेज प्रवेश के पहले किसी भी युवक के उम्मीदों के पंख असमान छूने लगते है। कॉलेज में प्रवेश के साथ ही एक उन्मुक्त खुले गगन में विचरने और देखने का यह प्रथम अवसर होता है। जिस सपनों के संसार के बारे में वो अब तक सुनता आया था, उसी संसार में वो उतर जाता है। कमसिन उम्र, खुला आकाश, ढीले होते बंधन और खूबसुरती देखने की ललक और कुछ नया करने का जुनून आपकी कॉलेज की जिन्दगी को एक यादगार समय बना देता है। मेरी कॉलेज की जिन्दगी ने मुझे उससे बहुत कुछ अधिक दिया जिसकी आम व्यक्ति कल्पना कर सकता है। मेरे कॉलेज प्रवेश के दो माह बाद ही वहां पर अखिल राजस्थान डिबेट कम्पीटिशन हुआ जो कि वहां प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता था और उसमें पूरे राज्यभर से प्रतियोगी हिस्सा लेने आते थे। मेरा सबसे पहले वहाँ की कॉलेज टीम में चयन हुआ और फिर मैं उस प्रतियोगिता में विजेता भी रहा। मेरे लिए यह कॉलेज के शुरूआती दिनों की अच्छी शुरूआत थी। इसी के चलते मैं कॉलेज के लिटटेरी क्लब एवं डिबेटिंग के इचार्ज प्रो. एम. के बोहरा सा. के सम्पर्क में आया जो उस समय हिन्दी विभाग के

विभागाध्यक्ष थे। उनसे मेरा गुरु शिष्य का ऐसा रिश्ता बना जिसका सपना शायद कॉलेज का हर अच्छा छात्र देखता है। जब भी देश के किसी भी कॉलेज या युनिवर्सिटी से डिबेट कम्पीटिशन का नियंत्रण पत्र आता तो बोहरा सा. मुझे रात को डिबेट के विषय की तैयारी करवाने हेतु घर पर बुलवाते। रात को आठ से दस या ग्यारह बजे तक उनके घर पर बैठना, विषय को अच्छी तरह समझना, सलाह लेना और अगले दिन सुबह की बस या ट्रेन से दूसरे शहर में डिबेट बोलने चला जाना ये क्रम हर महीने में आठ से दस दिन तक चलता था। और जब जीत कर आ जाऐं तो सबसे पहले उनके घर जाना और ट्राफी उन्हें थमाना। ये क्रम मेरे कॉलेज जीवन के पूरे पांच वर्ष तक जब तक कि मैंने एम. कॉम नहीं कर लिया, निर्बाध गति से चलता रहा। अभी उनकी उम्र करीब 92 वर्ष है लेकिन मानसिकरूप से पूर्ण सजग एवं सक्रिय है। इस डिबेट के जुनून के चलते बी.कॉम तृतीय वर्ष में मेरी कॉलेज में निर्धारित 75ः से उपस्थिति कम हो गई और में परीक्षा में बैठने के लिए अयोग्य हो गया, लेकिन बोहरा सा. और प्रिसिपल सा. ने मेरी उपस्थिति को पूरा करवाया और मैं परीक्षा में बैठ पाया। वैसे मैं कॉमर्स का विद्यार्थी था लेकिन मेरी सक्रियता की वजह से सभी विषयों के प्राध्यापक गण मुझसे पूरी तरह से परिचित हो गये थे। मैं कई बार सोचता हूँ कि मेरे जैसे हजारों–लाखों नवयुवक इस देश में होंगे जिनको कि उनके कॉलेज जीवन ने मंच दिया होगा, संवाद की कला दी होगी, आत्म विश्वास दिया होगा, संघर्ष में मजबूती से खड़े रहने का कौशल दिया होगा जिसकी वजह से वो इस देश और समाज का मार्गदर्शन कर रहे होंगे। यह आप पर निर्भर करता है कि आप अपने कॉलेज जीवन से कितना ग्रहण कर पाते है।

संभवतः मेरे शैक्षणिक जीवन की सफलता के पीछे बहुत बड़ा हाथ मेरे कॉलेज का है जिसने मुझे निखारा और नयारूप दिया। मैं जब बी. काम द्वितीय वर्ष का छात्र था तभी मेरी मम्मी की रीढ़ की हड्डी में तकलीफ हो गई जिसकी वजह से करीब 2 वर्ष तक उन्हें बिस्तर पर ही लेटे रहना पड़ा। ये हम सभी परिवार वालों के लिए भी एक पीडादायक समय रहा लेकिन उस बिमारी को हरा कर मम्मी पूरी तरह ठीक हो पाई और आने वाले तीस वर्षों तक उनका समय अच्छा निकला। जिन्दगी में अच्छा समय भी आता है और खराब समय भी

आता है, लेकिन अच्छा समय तय जल्दी भूल जाते है और खराब समय देर तक हम याद करते है।

कवि उदयप्रताप सिंह जी के शब्दों में

हुआ सफर का यही तजुर्बा, वो रेल का हो या हो जिन्दगी का
मिला कही भी हसीन मंजर, वो पलक झपकते गुजर गया है

अच्छा समय भी हमेशा नहीं रहता ओर खराब समय भी हमेशा नहीं रहता। हां उनकी अवधि कम, ज्यादा हो सकती है।

कॉलेज के समय में मेरा दूसरा जुनून था शंतरज के प्रति लगाव। घर पर भी मेरे कई मित्र और रिश्तेदार आ जाते और मै काफी समय शतरंज की बिसात पर बिता देता था। कॉलेज में हर मुख्य खेल का एक इन्चार्ज होता है और एक गेम्स ऑफिसर भी होता है। मैंने शतरंज टीम के मुख्य कोच से सम्पर्क कर पहले वर्ष से ही शतरंज के प्रति अपने लगाव के बारे में बता दिया। उनके निर्देश पर मैं प्रतिदिन शाम 5 बजे कॉलेज के स्पोर्टस काम्पलैक्स में आने लगा। दिन के तीन बजे मैं कॉलेज से घर आता और शाम को 5 बजे वापस साइकिल लेकर कॉलेज ग्राउन्ड पर आ जाता। शाम के समय कॉलेज ग्राउन्ड का बेहद दिलकश नजारा होता था जो आज भी मेरी नजरों में समाया रहता है। शाम को 5 से 7 बजे तक करीब सौ से डेढ सौ छात्र–छात्राऐं कॉलेज ग्राउन्ड पर पहुंचते थे और सभी अपनी–अपनी साइकिलों पर पहुंचते थे। कॉलेज पवेलियन के भीतर हॉल में टेबल टेनिस के खिलाडी प्रैक्टिस कर रहे होते, पवेलियन के बिल्कुल सामने वाले मैदान में हॉकी टीम की प्रैक्टिस चल रही होती, साइड में वालीबॉल की टीमें खेल रही होती, कॉलेज के हॉल में बैडमिन्टन की टीम जमी होती और हर टीम के साथ–साथ उनके समर्थक जो हूटिंग करते थे वो भी रहते। पवेलियन की पीछे नीचे बेसमैन्ट में कैन्टीन थी जहां से खिलाड़ियों के लिए चाय और गरम–गरम पकौडे या कचोरी आती रहती थी। मैं अपनी शतरंज टीम के खिलाड़ी के साथ पवैलियन की सीढियों पर बैठकर मैच खेलता था ताकि सामने हॉकी खेलते खिलाड़ियों को भी देख सकूं और कैन्टीन की चाय का खुले में बैठकर पूरा आनन्द ले सकूं। पिछले पांच दशकों से मैं युनिवर्सिटी में अध्यापन कर रहा हूँ। एक चीज जो में सबसे ज्यादा मिस करता हूँ तो वो हैः कॉलेज ग्राउन्ड

का शाम का ऐसा मनोरम दृश्य। तनावों से जूंझती हुई निराशा के गहरे सागर में डूबती, ड्रग्स की लत में पड़ी हुई, सोशल मीडिया की रील से चिपककर रियल से भटकती हुई पीढ़ी के लिऐ ये सारी चीजे शायद दिवा स्वन की तरह लगेगी।

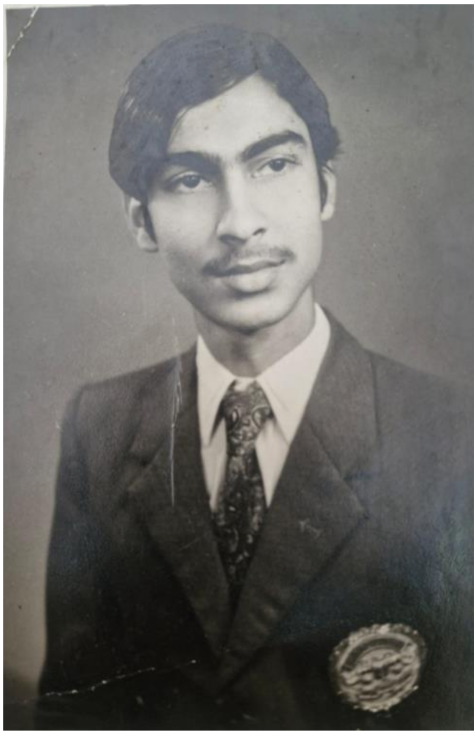

प्राइवेट कॉलेजों गैर शिक्षण संस्थाओं में तो ऐसे वातावरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ना तो उनके पास खेल के मैदान हैं, (अगर मैदान हैं तो कुछ समय में उस पर दूसरा कॉलेज खुल जायेगा) ना ऐसी संस्कृति है। उनका मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना और एक कॉलेज से पैसा कमाकर दूसरा कॉलेज खोलने तक ही सीमित है। यही वजह है कि लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी और एमिटी युनिवर्सिटी को छोड़कर पूरे देश में किसी प्राइवेट युनिवर्सिटी ने कोई भी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी तैयार नहीं किया।

शतरंज के प्रति मेरे लगाव और परिणाम को देखते हुए, मुझे कॉलेज शतरंज टीम का कप्तान चुन लिया गया जब मैं बी कॉम अन्तिम वर्ष का छात्र था। कप्तान बनने से भी ज्यादा खुशी मुझे कॉलेज से मिले कलर से (कॉलेज का मोनोग्राम) से हुई जिसे हर एक खिलाड़ी अपने ब्लैजर कोट के उपर की बांयी जेब के उपर लगाता है।

कॉलेज में प्रतिवर्ष हर फैकल्टी से एक छात्र को बैस्ट स्टूडैंट ऑफ द इयर से नवाजा जाता था। वर्ष 1976 में जब मैं बी.काम फाइनल इयर में था मुझे बैस्ट स्टूडैंड आफ कॉमर्स फैकल्टी का खिताब दिया गया।

बी.काम. फाइनल इयर तक आते–आते मैं जीवन के उन्नीसवे वर्ष में प्रवेश कर चुका था। जवानी का दौर था और कॉलेज भी सक्रिय जिन्दगी। अगर किसी अच्छे सामाजिक बदलाव से आपका दिल आनंदित नहीं हो रहा है और किसी सामाजिक राजनैतिक भटकाव से आपका दिल आंदोलित नहीं हो रहा है तो फिर यकीन मानिये आप जिन्दगी तो जी रहे हैं लेकिन जवानी नहीं जी पा रहे हैं। मैं चर्चा कर रहा हूँ वर्ष 1975 की और उस वर्ष देश की दो महत्वपूर्ण घटनाओं की, जिसने सामाजिक, राजनैतिक चिन्तन को नई दिशा दी और देश दी जवानी को क्रान्ति के गीत गाने का अवसर दिया।

पहली घटना थी लोकनायक जयप्रकाश नारायण का समग्र क्रान्ति आन्दोलन जो गुजरात से चालू हुआ और पूरे देश का आन्दोलन बन गया। स्वतंत्रता के बाद देश ने युवा शक्ति का इतना संगठित और व्यापक स्तर का आन्दोलन पहली बार देखा। उस दौर में मैंने भी कई मंचों से उस आंदोलन के समर्थन में समाएँ की। महाकवि दुष्यन्त कुमार, लालधुंआ, फणीश्वर नाथ रेणु, दिनकर जैसे कवि और लेखक मेरे जैसे हजारों युवकों के आदर्श बन गये।

मैं भी महाकवि दुष्यन्त की वो लाइने उसी दौर में गुनगुनाने लगा था:

मेरे सीने में न सही, तेरे सीने में ही सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

आज जयप्रकाश नारायण आन्दोलन पांच दशक पुराना अफसाना हो गया, लेकिन मैं आज तक यह नहीं समझ पाया कि इतना बड़ा और संगठित आंदोलन जिसमें देश की अच्छी खासी जनता जुड़ी वो असफल क्यों हो गया? क्यों अपने लक्ष्य से भटककर सिर्फ सता परिवर्तन का साधन बनकर रह गया जब कि किसी भी क्रान्ति का लक्ष्य सत्ता नहीं बल्कि व्यवस्था परिवर्तन होता है। यह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि विश्व की समस्त महान क्रान्तियाँ महज सता परिवर्तन का माध्यम बनकर अपने क्रान्ति उद्देश्यों से भटक गई, चाहे फ्रांस की.रूस की, चीन की क्यूबा की या फिर इटली की क्रान्ति हो।

आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी
शर्त थी लेकिन ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

वर्ष 1975 की ही दूसरी घटना जिसने भी मुझ जैसे लाखों नौजवानों को न केवल प्रभावित किया बल्कि भीतर से हिलाकर रख दिया। 26 जून 1975 को मैने आकाशवाणी से समाचार सुना कि देश में आपातकाल लागू कर दिया गया है। कभी–कभी आप उन क्षणों के साक्षी बन जाते हो जब आप अपने आप से यह प्रश्न करते हो कि मैं यह सब कुछ क्यों देख रहा हूँ? मैं उस समय बी.कॉम द्वितीय वर्ष का छात्र था। एक अध्यादेश पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर ने देश की जनता के सारे मूलभूत प्रधिकारों को छीन लिया और हर तरह के आन्दोलन एवं प्रदर्शन पर रोक लगा दी। हजारो लोगों को जेल में डाल दिया गया। जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन को मिले विशाल जनसमर्थन की वजह से सरकार को ऐसा करना पड़ा। जिस दिन राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद देश में आपातकाल लगाया गया, मैंने अपने मित्रों से कहा'' एक हस्ताक्षर ने इस देश के लोकतंत्र को तानाशाही में बदल दिया।''

जब मैं बी.कॉम. द्वितीय वर्ष का छात्र था, तभी से मुझमें युनिवर्सिटी का प्रोफेसर बनने की इच्छा अच्छी खासी जागृत हो चुकी थी। इसके मुख्यतः दो कारण थेः

पहलाः मैं दसवी कक्षा से कॉलेज तक कई ऐसे महान व्यक्तियों को सुन चुका था जिन्होंने अपना कैरियर प्रोफेसर केरूप में चालू किया था और जिनकी संवाद शैली का कायल था उनमे ओशो, हरिवंशराय बच्चन, फिराक गोरखपुरी, अज्ञेय, गोपालदास नीरज, सर्वपल्ली डॉ.

राधाकृष्ण जैसे प्रमुख नाम थे। इन सभी लोगों को मैनें व्यक्तिशः बोलते हुए देखा था, उनकी भाव भंगिमा, बॉडी लैग्वेज सभी चीजों का मैंने बारीकी से अवलोकन किया और उनकी अच्छी संवाद शैली देखी और एक बेहतरीन किस्म का आत्मविश्वास भी देखा।

दूसराः मैं स्कूल और कॉलेज में विभिन्न मंचों पर सक्रिय रहते हुए यह समझ रहा था कि मैं प्रोफेसर की पद पर अपनी कुशलता की छाप छोड सकता हूँ।

इस देश की बदलती हुई तस्वीर और सामाजिक समरसता में मेरे जैसे उन निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों से निकले युवकों और युवतियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है जिन्होंने फटे हाल, खाली जेब, और खाली पेट रहकर चांद सितारों को छूने के सपने देखे और उन सपनों को पूरा भी कर रहे है। बुलन्द भारत की इस बुलन्द तस्वीर को उन्होंने अपने खून पसीने से गढ़ा है।

इस देश को बहुत बड़े–बड़े पूंजीपति नहीं चला रहे हैं बल्कि वो आम आदमी चला रहे हैं जो हर दिन संघर्षों की नई इबारत लिख रहे है, बच्चों के भविष्य को संवारने में पूरी निष्ठा से लगे हैं, पूरी ईमानदारी से अपना इन्कम टैक्स दे रहे है, आधी जिन्दगी तक मकानों के लोन की किश्तें चुका रहे है और अपने बुढापे को सुरक्षित करने की कवायद में जी जान से जुटे हैं।

चूंकि मै कॉलेज में जयप्रकाश आन्दोलन से जुडा था इस वजह से 1977 का देश का आम चुनाव मेरे जैसे नवयुवकों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण था। आपातकाल के बाद का वह पहला चुनाव था। मैं भी तत्कालीन जनता पार्टी का पोलिंग एजेन्ट बनकर मेरे गांव टाडगढ़ के पास डांसरिया में गया क्योंकि डांसरिया गांव से ही मेरे दादासा निकलकर टाडगढ़ आये थे। उस गांव में एक रात गुजारना, गांव वालों से मिलना, पार्टी द्वारा भेजा गया खाना खाना जिसमें 6 पूडी और आलू की सब्जी रहती थी, अपने पुर्वजों की जमीन से जुड़ने का अहसास, सभी कुछ अचरज में डालने वाला था।

क्योंकि प्रोफसेर के पद के लिये स्नातकोत्तर डिग्री होना आवश्यक होता है इसलिए बी.काम. करते ही मैंने एम. काम में प्रवेश लिया और

1978 में एम. काम की परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें कि मैने विश्वविद्यालय की मैरिट में तीसरा स्थान प्राप्त किया। जून 1978 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर मेरा साक्षात्कार हुआ। वह पहला अवसर था जब 21 वर्ष की उम्र में मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय का विशालकाय और मनमोहक परिसर देखा और उसका खूबसूरती का कायल हो गया।

साक्षात्कार के दौरान मैंने देखा कि करीब–करीब सभी अभ्यर्थी राजस्थान विश्वविद्यालय के ही पूर्व छात्र है जब कि मैं अकेला ब्यावर जैसे छोटे से कस्बे से आया था। लेकिन मैं महानरूसी लेखक मैक्सिम गोर्की के उस कथन को हमेशा दिमाग में रखता हूँ कि सीना तान कर खड़े होने का जज्बा–और आंख में आंख डालकर बात करने का हुनर ये दोनों चीजे तुम्हे जिन्दगी में बहुत आगे ले जायेगी। मैं जब साक्षात्कार के बाद कमरे से निकला तो पूरा आश्वस्त था कि आज का दिन मेरा था। आज जब मै क्लास में पढाने जाता हूँ और छात्रों से पूछता हूँ कि जहाँ से तुमने ग्रेज्यूएशन किया है उस कॉलेज के प्रिसीपल या डीन का क्या नाम है तो करीब 50 प्रतिशत छात्रों को पता नहीं होता। करीब 50 प्रतिशत छात्र यह कहते हैं कि पूरे तीन वर्षों के ग्रेज्यूएशन कोर्स में 5 या 7 बार ही कॉलेज गये है। ये तथ्य बताते है कि कॉलेज जाने वाला युवा वर्ग अपनी युवावस्था को ठीक से जी नहीं पा रहा है।

मेरा मानना है कि कॉलेज की जिन्दगी ऐसी जिन्दगी है जहां आप अपनी विचारधारा बना सकते है, अपने जुनून को नये आयाम दे सकते है, महान व्यक्तियों को पढ़ सकते है, सुन सकते है, रंगमंच के भय को दूर कर सकते है, नये संगठनों से जुड़ाव की शुरूआत कर सकते है और एक बेहतरीन इन्सान बनने की तरफ एक कदम उठा सकते है।

# 5.
# विश्वविद्यालय अध्यापन की दुनिया में

जीवन में व्यक्ति दो अवसरों पर काफी प्रसन्न होता हैः पहला मनपसन्द जीवन साथी मिलने पर और दूसरा मनपसंद नौकरी मिलने पर। मनपसन्द नौकरी में भी दो पहलू होते हैः पहला मनपसंद क्षेत्र में और दूसरा उसी क्षेत्र की मनपसंद युनिट में। मैं भाग्यशाली मानता हूँ अपने आप को कि मुझे मेरी मनपसंद क्षेत्र विश्वविद्यालय शिक्षण और उसमें भी मनपसन्द युनिट राजस्थान विश्वविद्यालय से अपना जॉब कैरियर शुरू करने का अवसर मिला। जब आप अपनी नौकरी की शुरुआत किसी अच्छे संगठन से करते है तो आपको अच्छे मार्गदर्शक मिलते है, अच्छी मित्र मण्डली मिलती है, अच्छी संस्कृति से आपरूबरू होते हैं, चिन्तन के नये सोपान खुलते हैं, संभावनाओं का खुला आसमान आपके सामने होता है और ये सभी चीजें मिल कर आपके व्यक्तित्व में निखार और चमक लेकर आती है जो आपकी पूरी जिन्दगी को प्रभावित करती है। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने अपने जीवन काल में देश और विदेश के कई अलग–अलग विश्वविद्यालयों में काम किया है लेकिन जो कुछ मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय में ग्रहण किया, देखा और सीखा उसने जीवन भर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरे शैक्षणिक जीवन की यात्रा को सुगम बनाया।

आपकी सीधी, सरल सी जिन्दगी में अगला पल क्या सन्देश लेकर आ रहा है वो आपकी कल्पना से परे होता है। ये 10 अक्टूबर 1978 की बात है, मैं ब्यावर अपने घर पर पलंग पर लेटा हुआ था, भविष्य के बारे में सोच रहा रहा था। कॉलेज शिक्षा निदेशालय से एक टैलीग्राम आ चुका था, जिसमें मुझे 20 अक्टूबर तक राजकीय महाविद्यालय पाली में प्राध्यापक के पद पर ज्वाइन करने का निर्देश था, एक प्राइवेट कॉलेज से भी पत्र आ चुका था। तभी डाकिये ने आवाज दी। जब मै

बाहर गया तो एक अन्तर्दशीय पत्र था। जब उसे मैंने खोलकर देखा तो राजस्थान विश्वविद्यालय के व्यवसाय प्रशासन विभाग के हैड डॉ. आर. के बजाज का व्यक्तिगत पत्र था जिसमें उन्होंने लिखा था ''प्रिय प्रदीप, तुम्हारा यहाँ विश्वविद्यालय में चयन हो गया है, तुम दो तीन में यही आ जाओ और अपना नियुक्ति पत्र लेकर तुरन्त ज्वाइन कर लो।'' उस चार लाइन के पत्र ने मेरे पूरे भविष्य की दिशा निर्धारित कर दी। उस समय राजकीय महाविद्यालयों से निकले फ्रैश पोस्ट ग्रेज्युएट छात्रों को सीधे विश्वविद्यालय में नौकरी नहीं मिल पाती थी, क्योंकि पहली प्राथमिकता विश्वविद्यालय के रिसर्च स्कालर या वही से पढ़ाई पूरी करने वाले छात्रों की ही रहती थी। मेरे साथ पांच लोगों की नियुक्ति हुई लेकिन वो सभी राजस्थान विश्वविद्यालय के पुराने लोग थे। मेरे चयन में संभवतः मेरा पूरा अकादमिक रिकॉर्ड प्रथम श्रेणी का रहना तथा साक्षात्कार के दौरान अच्छी चर्चा होना मुख्य कारण रहे होंगे।

13 अक्टूबर 1978 को सुबह मैंने बस द्वारा ब्यावर से जयपुर के लिए प्रस्थान किया। जीवन की सबसे बड़ी खुशी का पल वो होता है जब आप अपने ख्वाबों को मुकम्मल होता देखते हैं। मेरे लिये संभवतः वो ऐसा ही पल था और मेरे साथ था आने वाले भविष्य का चिन्तन और सामान के नाम पर एक सन्दूक और एक पीपा। बस में बैठने के बाद मुझे काफी देर तक याद आते रहे उन सभी मित्रों के चेहरे जो पांच वर्ष के कॉलेज जीवन में मेरे साथ सुख–दुख बांटते रहे और उन सभी गुरुजनों के चेहरे जिन्होंने मुझे भावनात्मक, बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक समर्थन देकर मुझे बस में बैठा कर जयपुर भेज दिया एक नई जमीन की तलाश में। आज पचास वर्ष बाद जब मैं उस बस यात्रा को याद करता हूँ तो मजरूह सुल्तानपुरी का मशहूर शेर मुझे बार–बार याद आता है –

मैं अकेला ही चला था जानिब ए मंजिल मगर
लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया

करीब 6 घण्टे के सफर के बाद मैं जयपुर पहुँचा। छोटी बहन कल्पना जिसका 6 माह पूर्व ही विवाह हुआ था उसका ससुराल जयपुर ही था, वहाँ ठहरने के अलावा कोई दूसरा विकल्प ही नहीं था। कल्पना के ससुर जी श्री मनोहर सिंह जी जो एक I.A.S. अधिकारी थे उन्हें

गांधीनगर मे ही सरकारी आवास मिला हुआ था, वहीं मै जाकररूक गया। श्री मोगरा साहब काफी अच्छे व भले इन्सान थे। अपनी बातो को तर्क के साथ रखने का अच्छा हुनर था उनमें। उनकी पत्नी उतनी ही तेज तर्रार थी। ईश्वर शादी–शुदा हर जोडे के साथ कई तरह के बैलेंस कर देता है। ये बैलेंस मैंने प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो में काफी देखा है। आफिस में बॉस की छवि एक तेज और कड़क प्रशासक की बनी हुई है और घर में पत्नि के सामने बिल्कुल उलट स्थिति है। मैं जयपुर के भूगोल से बिल्कुल भी परिचित नहीं था और पूरी तरह से जयपुर मेरे लिए नया शहर था। एक दो दिन विश्वविद्यालय में घूम कर दिनांक 17 अक्टूबर को नियुक्ति पत्र लेकर उसी दिन मैंने विश्वविद्यालय में विधिवत सहायक प्रोफेसर के पद पर ज्वाइन कर लिया।

जिस दिन मैंने ज्वाइन किया उसके अगले दिन से ही मैंने अध्यापन चालू कर दिया। मेरी पहली क्लास एम.काम में थी। उस पहली क्लास की याद आज भी मेरे दिमाग में ताजा है। क्लास में 32 छात्र थे। सभी लम्बे–चौड़े, कई छात्र तो मेरे से भी बड़े थे उम्र में। क्लास समाप्त होने के बाद उन्होंने कहा सर आपकी आज पहली क्लास थी इसलिये आपको हम सभी को चाय पिलानी पडेगी। मैंने कहा ठीक है। वो सारे छात्र मुझे छत्ते जिसे यूनिवर्सिटी कैन्टीन भी कह सकते है, ले गये। मेरी जेब में उस समय करीब दसरूपये थे। वहाँ जाकर मैने देखा हर छात्र अपनी इच्छा से जो चाहे वह मंगवा रहा है खाने के लिये। कोई कॉफी का आर्डर दे रहा है, कोई कचोरी का, कोई कोक का, कोई ब्रेडपकोडे का। मैं मन में सोच रहा था आज पहले दिन ही इज्जत खराब जायेगी क्योंकि अच्छा खासा बिल बनने वाला था।

जब सारे छात्र खा पी चुके तो एक छात्र आगे आया और उसने कहा सर हम सभी लोग मजाक कर रहे थे। यह पार्टी तो हमारी तरफ से थी आपके कैरियर की शुरुआत के उपलक्ष्य में। यह कह कर उसने सारा बिल चुकता कर दिया। उस समय मेरी उम्र 21 वर्ष की थी और मैं विश्वविद्यालय में सबसे छोटी उम्र का सहायक प्रोफेसर था। कई एम.काम के छात्र भी या तो मेरे बराबर ही थे या एक दो वर्ष ही छोटे थे। पांच–सात दिन बाद एक किराये का मकान युनिवर्सिटी के पीछे ही तिलक नगर में दयानन्द मार्ग पर ले लिया। पीछे वाले भाग में एक

कमरा और छोटी सी रसोई मिल गई। पास के एक कमरे में एक एल.एल.बी. के छात्र श्री टेकचन्द कटारिया रह रहे थे। उस छोटे से किराये के मकान से मैंने अपनी स्वतंत्र जीवन यात्रा की शुरूआत की। उस मकान में मैं करीब 3 साल रहा। नई–नई नौकरी, कुआरापन, राजस्थान विश्वविद्यालय का जीवन्त माहौल सब कुछ सकारात्मकता से भरा वातावरण लगता था। एक साइकिल जो मैं ब्यावर से ही साथ लेकर गया था, शुरूआत के कुछ दिन उसी साइकल पर रोज यूनिवर्सिटी जाता था। व्यक्ति और व्यवस्था के बीच में बड़ा गहरा अन्तर्सबंध होता है। कौन किसको कितना प्रभावित करता है यह तो निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता पर मेरा मानना है कि शुरूआत में व्यवस्था, व्यक्ति को प्रभावित करती है और व्यक्ति की ग्रहणीयता और सीखने की क्षमता अच्छी हो तो एक स्थिति के बाद वही व्यक्ति, व्यवस्था को प्रभावित करने की भी क्षमता रखता है। राजस्थान विश्वविद्यालय ने मुझे बहुत कुछ दिया, सिखाया, दिखाया और बढाया। मैं आज जो कुछ हूँ उसमें उस विश्वविद्यालय का बहुत बड़ा योगदान है। आज जहां व्यक्ति हर दो–तीन वर्ष में नौकरी बदलता रहता है या यूं कहें कि संस्था या संगठन से भगा दिया जाता है ऐसी स्थिति में न तो व्यक्ति कुछ दे पाता है और न ही संगठन।

1978 से 1982 तक का समय मैंने बहुत अच्छी तरह से गुजारा। सुबह 9 बजे तक नूतन स्टोव पर नाश्ता बना कर, तैयार होकर युनिवर्सिटी के लिये निकलना। वहां पर रोज दो–चार कक्षाऐं लेना जिसमें एक कक्षा एम.काम की, दो बी.कॉम की होती थी। कामर्स कालेज जो कि उस समय कामर्स शिक्षा के मामले में देश में दूसरा सबसे बड़ा व प्रतिष्ठित कॉलेज था (पहले नम्बर पर श्रीराम कॉलेज ऑफ कामर्स दिल्ली था) जिसके करीब 150 प्राध्यापक थे और कई प्राध्यापक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान रखते थे उनके साथ काम करना मेरे जैसे प्राध्यापक के लिये सबसे बड़ा पुरुस्कार था। कामर्स कालेज का स्टाफरूम जहाँ पर 15–20 प्राध्यापक हमेशा बैठे मिलते थे और उनके बीच राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर जो बहस होती थी, उसका स्तर आज की टी.वी. डिबेट से हजार गुना बेहतर होता था। मैंने कई बार ये कहा है कि युनिवर्सिटी का अध्यापन दुनिया की

सबसे बढ़िया नौकरी है जो आपको मानसिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं बौद्धिकरूप से हमेशा युवा बनाये रखती है।

करीब 4 बजे मैं वापस घर पर पहुँचता था उसके बाद मेरे मित्र टेकचन्द के साथ चाय पीना और करीब 5 बजे सर्दियों की शाम में तिलक नगर और राजा पार्क का चक्कर लगाना बड़ा सुकून देने वाला पल होता था। चूंकि मैं खाना बनाना नहीं जानता था इसलिये करीब 8 बजे मैं और मित्र टेकचन्द खाना खाने राजा पार्क निकलते और एक ही ठिकाना जो पाँच साल तक बरकरार रहा वो था राजा पार्क का हनुमान ढाबा। मेरे जैसे सैंकड़ों कुंवारे लोग या जो अकेले उस क्षेत्र में रहते थे उनका एक मात्र खाने का ठिकाना उस समय हनुमान ढाबा हुआ करता था।

रात को खाना खाने के बाद कुछ अच्छा पढ़ना और अगले दिन के लैक्चर तैयार करना एजेन्डा में शामिल होता था। मैं लम्बे समय तक कस्तूरबा गांधी मार्ग दिल्ली स्थित अमरीकन सेन्टर लाइब्रेरी का सदस्य रहा। यह लाइब्रेरी बड़ी समृद्ध लाइब्रेरी है। अपने सदस्यों को, वे चाहे देश के किसी भी भाग में हों ये लाइब्रेरी रजिस्टर्ड पोस्ट के माध्यम से एक माह के लिये एक पुस्तक निशुल्क भेजती है। एक माह के बाद सदस्य को वापस रजिस्टर्ड पोस्ट के माध्यम से पुस्तक भेजनी पड़ती है। एक तरफ की रजिस्टर्ड पोस्ट का खर्चा भी सेन्टर लाइब्रेरी वहन करती है। सैंकडों पुस्तकें मैंने इसी तरह पढ़ी हैं। दूसरा माध्यम था सोवियत पुस्तक मेले। वर्ष 2004—05 तक मैं सोवियत पुस्तक मेलों में लगातार जाता रहा। नामचीन सोवियत लेखकों की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद सिर्फ 2 या 3रूपये में उपलब्ध हो जाया करते थे। मैक्सिम गोर्की, चिखोव, टॉलस्टाय, दोस्तोवस्की जैसे कालजयी क्रान्तिकारी लेखकों की पुस्तकों को इस माध्यम से पढ़ने का अवसर मिला। अस्सी के दशक मे न तो टी.वी का शोर था, न ही मोबाइल का दौर इसलिये मस्तिष्क व्यर्थ में व्यस्त नहीं रहता था और पुस्तकों और अच्छे साहित्य को पढ़ने के लिये अच्छा समय हर एक को मिल जाता था। इस के साथ ही उस दौर में अच्छे व्यक्तियों को सुनना और अपने बीच उन्हें देखना बहुत बड़ा रोमांच उत्पन्न करता था, विशेषरूप से मेरे जैसे व्यक्ति के लिए जो कि ब्यावर जैसे एक छोटे शहर से जयपुर आकर बसा हो।

राजस्थान विश्वविद्यालय में उस दौर में कई राष्ट्रीय स्तर की विभूतियां प्रोफेसर पद कार्यरत थी। उनमें प्रो. दया कृष्ण, प्रो. इकबाल नारायण, प्रो.पाही, प्रो. ओमप्रकाश, प्रो. कौल आदि प्रमुख थे। कुछ लोग ऐसे होते है जो शिक्षा जगत को अपना पसीना देकर नहीं, खून देकर सीचते हैं, ये लोग उनमें से थे।

शैक्षिक माहौल के साथ ही विश्वविद्यालय में मस्ती के माहौल में भी कमी नहीं होती थी। खाली समय में युनिवर्सिटी गेट के बाहर चाय की थड़ियों पर मुड्डियों पर दोस्तो के साथ बैठना और चाय के साथ ब्रेड पकोडे खाना बड़ा सुकून देता था। उन दिनों यह बात बड़ी मशहूर थी कि इन चाय की थड़ियों पर देश के बड़े–बड़े अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक आपको बैठे मिल जायेगे। मेरे साथ जितने भी मित्र थडी पर बैठते थे अधिकाशतः, कुंवारे थे और कैरियर बनाने मे संघर्ष के दौर में थे इसलिए चर्चा का एजेन्डा भी अलग ही होता था। किस की शादी होने वाली है ? कौन अपनी स्टूडेन्ट के साथ मजे कर रहा है ? कौन किस मैडम को पटा रहा है ? या किसके घरवालों ने लव मैरिज के चक्कर में उसे घर से बाहर का रास्ता दिखा दिया है ? किस मैडम को किस के साथ कौन से रेस्टोरेन्ट में देखा है ?। आज दोनों ही कॉलेज क्यों नहीं आये है ? कौन न्च्छ की तैयारी कर रहा है? कौन दूसरी यूनिवर्सिटी ज्वाइन कर रहा है ? किसे अमेरिकन फैलोशिप मिली है या किसे कौन सा अवार्ड मिला है? किस की पी.एच.डी कब पूरी हो रही है? कहते है देश या शहर बूढ़ा हो सकता है जनसंख्या की उमर के लिहाज से लेकिन यूनिवर्सिटी बुढ़ी नहीं होती। वो हमेशा जवान रहती है। यही बात मैंने राजस्थान यूनिवर्सिटी में देखी है। कैम्पस में घुमते ही आपको वहाँ की तासिर, माहौल, आबोहवा सब कुछ ऐसी मिलेगी कि जैसे पूरी यूनिवर्सिटी भरपूर जवानी के दौर से गुजर रही है। वहाँ के प्रोफेसर, कर्मचारी, छात्र, छात्राऐं सभी उसी माहौल के जीने के अभ्यस्त हो गये है। मेरी बात से हो सकता है, मेरे समय के ही साथी प्रोफेसर गण इतफाक ना रखें उसकी एक वजह यह हो सकती है कि मशाल के नीचे खड़े लोगों को अंधेरे का ही एहसास होता है लेकिन मैंने देश विदेश के कई विश्वविद्यालयों में सेवाऐं दी हैं लेकिन आज तक राजस्थान विश्वविद्यालय में बिताये गये बारह वर्ष नहीं भूल पाया हूँ।

विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी एक ऐसी जगह होती है जो उसका दिल और आत्मा दोनों ही होती है। शुरुआती दिनों में जब में शोधकार्य में व्यस्त था, प्रतिदिन 2–3 घण्टे लाइब्रेरी में ही गुजारता था। छात्रों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों तथा बाहरी आगन्तुको से हमेशा लाइब्रेरी गुलजार रहती थी। रीडिंगरूम में मैंने छात्रों और शोधार्थियों के साथ कई वरिष्ठ प्राध्यापकों को भी हमेशा पढ़ते देखा। ये बात अलग है कि जिन प्राध्यापकों को मैंने देखा उन्हें हमेशा देखा और जिन्हें नहीं देखा उन्हीं कभी नहीं देखा। चाहे वह शैक्षिक जगत हो या अन्य कोई व्यवस्था, कमोबेशरूप से 10 प्रतिशत व्यक्ति ही ऐसे होते है जो व्यवस्था के मूल्यों को पूरी शक्ति से जीते है और उन्हीं की बदौलत सम्पूर्ण व्यवस्था चलती है और चमकती है। एक बहुत सुन्दर व्यवस्था जो मैंने वहाँ देखी वो थी लाइब्रेरी में शोधार्थियों को सीट का आवंटन। ऐसे शोधार्थी जो वहीं बैठकर कुछ पढ़ना लिखना चाहें उनको एक या दो वर्ष के लिए एक स्थान आवंटित हो जाता है। जिसमें एक टेबल, कुर्सी और पुस्तके रखने के लिए कुछ जगह होती है जहां बैठकर वो अपना कार्य कर सकते है। कुल मिलाकर लाइब्रेरी के भीतर की व्यवस्था ऐसी शानदार है कि उसका हर कौना आपको गुलजार मिलेगा चाहे रीडिंग कम हो, बुक इश्यू काउन्टर हो या लाइब्रेरी का प्रवेश द्वार। मैंने कई बार देखा की लाइब्रेरी प्रवेश द्वार के बाहर की सीढ़ियों पर भी आने जाने कलों का मेला लगा रहता था और कई बड़े–बड़े प्रोफेसर और शोधर्थियों का लाइब्रेरी प्रवेश द्वार या सीढ़ियों पर मिलना जुलना भी होता रहता था।

नियुक्ति के दो वर्ष के भीतर वरिष्ठ प्राध्यापकों व सार्थियों से संवाद करते–करते मुझे इस बात का अहसास हो गया कि बिना पी.एच.डी. (Ph.D) किये आगे बढ़ने की कोई संभावना नहीं है। दूसरा यहां चलने से काम नहीं चलेगा बल्कि तेज दौड़ना पड़ेगा तभी कुछ कर पायेंगे। Ph.D करने के लिए एक गाइड के निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है और सभी इच्छुक लोगों की यह इच्छा होती है कि गाइड कोई सीनियर प्रोफेसर ही मिल जाए। संयोगवश मेरे व्यवसाय प्रशासन विभाग में प्रोफेसर आर.एन. सिंह जिन्होंने शिमला विश्वविद्यालय से राजस्थान में उन्हीं दिनों ज्वाइन किया था तथा उस समय उनकी ख्याति भी अच्छी थी, उन्होंने मेरे Ph.D कार्य का गाइड बनना स्वीकार कर लिया। उनके

साथ शोध का करीब ढाई साल का समय तथा शोध के बाद भी उनके अंतिम समय तक मेरा सम्पर्क बहुत शालीन गरिमामय तथा पारिवारिक बना रहा। शोधार्थी तथा उसके गाइड का सम्बन्ध गुरु शिष्य से भी बढ़कर पारिवारिक संबंध हो जाता है और यह सम्बन्ध जितना निकट एवं खुलापन लिये होता है, वो दोनो के लिये ही अच्छा होता है।

जब मेरी उम्र 25 वर्ष की और राजस्थान विश्वविद्यालय में कार्य करते हुए पांच वर्ष हो चुके थे और शोध करते हुए करीब डेढ़ वर्ष बीत चुका था मेरा विवाह दिनांक 5 जून 1982 को हो गया। एक बात विशेष रूप से करना चाहूंगा कि विवाह के बाद जीवन के हर लक्ष्य को आपको नये सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि कि उन लक्ष्यों को देखने वाली अब दो के बजाय चार आंखे हो जाती है।

वर्ष 1983 में मुझे यूनिवर्सिटी ने Ph.D की डिग्री प्रदान की। मेरे Viva में Indian Institute of Foreign Trade के एक वरिष्ठ प्रोफेसर आर.के. पाण्डे आये थे। शिक्षा क्षेत्र से जुड़े लोग यह समझ सकते है कि Ph.D की क्या अहमियत होती है एक सरकारी यूनिवर्सिटी शिक्षण से जुड़े व्यक्ति के लिए और वह भी आज से 50 वर्ष पूर्व Ph.D की डिग्री व्यक्ति के शैक्षिक खजाने में एक बेहतरीन नगीना होती थी और उस समय मेरी उम्र थी 26 वर्ष। एक युवा उम्र में Ph.D करने का फायदा मुझे पूरे जीवनभर मिलता रहा।

जब खिड़की खुलती है आसमान दिखाई देता है और जब नन्ही चिड़िया के बच्चों के लिये एक घौंसले का दरवाजा खुलता है तब उन्हें भी यही अहसास होता है। मुझे राजस्थान विश्वविद्यालय में कार्य करते–करते करीब 7 वर्ष का समय हो चुका था। मेरी Ph.D पूरी हो चुकी थी। इसलिये खुला आसमान दिखाई देने लगा। मैंने यह सोच लिया था कि आगे बढ़ने के लिये घर, गांव, राज्य का मोह छोड़ना पड़ेगा। वैसे भी मैं विजयनगर, केकड़ी ब्यावर होते हुए जयपुर पहुंचा था इसलिये जयपुर से शहर के तौर पर विशेष लगाव नहीं था। वर्ष 1984 (Year of orwel) के बाद मैंने कई विश्वविद्यालयों में तथा अन्य शैक्षिक संस्थानां में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर आवेदन करना चालू कर दिया था। इसी बीच वर्ष 1984 में राजस्थान विश्वविद्यालय ने मुझे रिसर्च गाइड केरूप में मान्यता दे दी अतः मुझे रिसर्च स्कालर्स को शोध करवाने का दायित्व भी मिल गया। मेरी पहली रिसर्च स्कॉलर गीतांजली लाल थी जो अब गीतांजली भटनागर है। ऐसी मान्यता उस समय थी कि रिसर्च गाइड बड़ा उमरदराज, सफेद बालों वाला कड़क व्यक्ति होता है लेकिन उस समय मेरी उम्र 27 वर्ष की और गीतांजली की उम्र करीब 22 वर्ष और ये दोनों ही उम्र शोध करने और शोध करवाने की तो नहीं होती है। मेरे शैक्षणिक जीवन में बहुत खूबसूरत चेहरे और दिमाग वाली रिसर्च स्कालर्स मिली उनमें से गीताजंली लाल भी है। रिसर्च स्कालर बनने से पहले वो मेरी एम.काम की छात्रा भी रही। निहायत खूबसूरत चेहरा और तीखे नाक नक्श और मानसिकरूप से भी उतनी ही सजग और तेज थी। तीन वर्षों तक बराबर हमारा शोध काल रहा। वो समय ऐसा था जब मैं भावनात्मक द्वन्द और अनियंत्रित आवेग वाली स्थिति से भी जूझता रहा। कुछ समय बाद

अलका जैन ने भी मेरे निर्देशन में शोधकार्य चालू किया। मेरे वैवाहिक जीवन में जो थोड़ा तनाव आया उसके दो ही कारण थे। पहला मेरे माता–पिता के साथ पत्नि छाया का सामजंस्य नहीं बैठ पाना और दूसरा मेरी शोध छात्राऐं। वर्ष 1986 में ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने मुझे प्रतिष्ठित कैरियर अवार्ड प्रदान किया। यह उस समय का एक चर्चित एवं लोकप्रिय पुरस्कार होता था जिसके तहत पूरे देश में कुल बीस युवा समाज वैज्ञानिकों को उनके पोस्ट डॉक्टरल शोध के लिये तीन वर्ष का सवैतनिक अवकाश व 5 लाखरूपये की शोध ग्रान्ट दी जाती थी। उस अवधि में मैंने राष्ट्रीय स्तर के कई प्रतिष्ठित संस्थानों व विश्वविद्यालयों में भ्रमण किया। वो एक ऐसा दौर था जिसमें मैने अपने शैक्षणिक जीवन तथा पारिवारिक जीवन के कुछ अच्छे मुकाम हासिल किये तो दूसरी तरफ पारिवारिक पृष्ठभूमि में तनाव और समस्याऐं भी उसी अनुपात में मिली। अच्छा समय हमेशा नहीं रहता और खराब समय भी हमेशा नहीं रहता लेकिन खराब समय कभी–कभी आपको इतना झकझोर देता है कि अच्छे समय का आनन्द हम भूल जाते हैं। कैरियर अवार्ड की अवधि के दौरान जे.एन.यू., दिल्ली विश्वविद्यालय, इन्डियन इन्स्टीटयूट ऑफ फॉरेन ट्रेड, इन्डियन इन्स्टीटयूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जैसी कई प्रतिष्ठित संस्थाओं में मेरा नियमित आना–जाना रहा। इस अवधि में मुझे कई ख्याति प्राप्त शिक्षाविदों व प्रोफेसरों से मिलने का व संवाद करने का सौभाग्य मिला जिनमें विश्वविद्यालयों के कुलपति, भारतीय प्रबंध संस्थान अहमदाबाद व बैंगलोर के कई प्रोफेसर तथा यू.जी.सी के वरिष्ठ पदाधिकारी शामिल हैं। इसी अवधि के दौरान मुझे महसूस हुआ कि एक अच्छे प्रोफेसर की शख्सियत में किस तरह की चमक होती है और क्यों प्रोफेसर को दुनिया का सबसे बढ़िया जॉब माना जाता है। लेकिन दूसरी तरफ मुझे यह भी अहसास हो गया कि इस तरह भी चमक को बनाने और बनाये रखने में स्वयं व्यक्ति की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है।

मेरे राजस्थान विश्वविद्यालय प्रवास के दौरान एक से बढ़कर एक कई राष्ट्रीय स्तर की प्रतिभाओं को कुलपति के पद पर सुशोभित होते देखा है। मैंने जब युनिवर्सिटी ज्वाइन की उस समय राजस्थान उच्च न्यायालय के भूतपर्व मुख्य न्यायाधीश श्री वेदपाल त्यागी ने कुलपति के पद का कार्यभार सम्भाल रखा था। उसके बाद राजनीति शास्त्र के

प्रोफेसर इकबाल नारायण कुलपति रहे। प्रख्यात समाशास्त्री प्रो. उन्नीतान, प्रो. आर.पी. अग्रवाल जैसे नामचीन व्यक्तित्व वहाँ पर कुलपति रहे। ये सारे वो व्यक्ति थे जो अपने विषय या क्षेत्र में राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का दर्जा रखते थे और जब भी विश्वविद्याय के किसी समारोह में बोलते थे तो उन लोगों को सुनना बड़ा अच्छा अनुभव होता था। दूसरी ओर छात्र राजनीति ने भी विश्वविद्यालय के कई सितारे को जन्म दिया उनमें से कई छात्र नेता राज्य मंत्रिमंडल में भी शामिल हुए। कुल मिलाकर एक बहुत सुन्दर व्यवस्था और एक अच्छी संस्कृति को देखने का अवसर उस दौर में मिला जिसकी आज के समय में सिर्फ कल्पना की जा सकती है।

राजस्थान विश्वविद्यालय में मेरा ये समय शैक्षिक दृष्टि से बहुत ही अच्छा गुजर रहा था जिसे मैं पूरी तरह से सार्थक करने में लगा रहता था। वर्ष 1987 आते–आते मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय छोड़कर किसी दूसरे विश्वविद्यालय में जाने का मानस बना लिया था क्यों कि राजस्थान वि.वि. में मुझे प्रमोशन या निकट भविष्य में आगे बढ़ने का अवसर नजर नहीं आ रहा था। कई विश्वविद्यालयों में मैंने इन्टरव्यू दिये। मैं कहीं भी और किसी भी दिशा में जाने को तैयार था। वर्ष 1989 में मेरा चयन एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में हो गया। कई बार छोटी सी असावधानी आपके कैरियर पर भारी पड़ जाती है। सरकारी व्यवस्था में एक नियम है कि जब भी आप किसी दूसरे सरकारी विभाग में नौकरी के लिये आवेदन कर रहे है तो आपको अपना आवेदन पत्र वर्तमान विभागाध्यक्ष से फारवर्ड करवाना पड़ता है। मेरी गलती यह रही कि मैंने विक्रम विश्वविद्यालय में अपना आवेदन सीधे ही भेज दिया। जब मेरा चयन विक्रम विश्वविद्यालय में हो गया तो मुझे इसी बिना पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने रिलीव करने से मना कर दिया, साथ ही विक्रम विश्वविद्यालय ने भी मुझे ज्वाइन करवाने से मना कर दिया। बड़ी मुश्किल से तथा कई वरिष्ठ प्रोफेसरों कक दखल के बाद मुझे तत्कालीन कुलपति प्रो. एस.एन. सिन्हा ने रिलीव करने में आदेश जारी किये। राजस्थान विश्वविद्यालय से रिलीव होकर में उज्जैन विक्रम विश्वविद्यालय में पहुँचा और एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर 1989 में ज्वाइन किया।

उज्जैन की फिजा में एक अलग तरह की खुशबू है। 5000 वर्ष पुराना शहर, यहाँ का महाकालेश्वर मंदिर, जो देश के 12 ज्योतिर्लिगो में से एक है, शिप्रा नदी का किनारा और 100 से अधिक मंदिर, उज्जैन को देश के सबसे पवित्र और ऐतिहासिक शहरों में से एक बनाते है। खगोल शास्त्र और ज्योतिष की दृष्टि से भी उज्जैन एक महत्वपूर्ण शहर है। उज्जैन को पृथ्वी का केन्द्र बिन्दु माना जाता है और कर्क रेखा के गुजरने के कारण यह खगोलीय गणनाओं और ज्योतिष के लिए एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। एक और जहां कालिदास, वराह मिहिर, बाणभट्ट, भर्तहरि और शंकराचार्य जैसे महान विद्वानों का उज्जैन से जुड़ाव रहा तो दूसरी तरफ राजा विक्रमादित्य ने इस शहर को अपनी राजधानी बनाया। इसी तरह से यह शहर आध्यात्मिक रंग में भी रंगा नजर आता है। उज्जैन का दिल, केन्द्र बिन्दु और व्यस्ततम स्थान फ्री गंज है। यहाँ एक बहुत बड़ा चौराहा ओर उसके बीचोंबीच एक क्लाक टॉवर है। शाम होते ही यहाँ की रौनक कई गुना बढ़ जाती हे। कई तरह के फूलों, मालाओं और इत्र की दूकानों की मनभावन खुशबू और लजीज मिठाई की दूकानों की चमचमाहट मन को बड़ा सुकून देती है तो दूसरी तरफ भांग की ठंडाई वाली दूकानें शहर की मस्ती का आभास कराती है। उज्जैन प्रवास के दौरान मैंने एक नई दुनिया का दर्शन किया। मुझे विक्रम विश्वविद्यालय से कई गुना अधिक उज्जैन शहर की संस्कृति, लोगों का जमीन से जुड़ाव, सादगी तथा धर्म के प्रति जनमानस की गहरी आसक्ति ने प्रभावित किया। मैंने कई वर्षों तक अपने आप से यह प्रश्न किया कि मैं राजस्थान विश्वविद्यालय जैसी प्रतिष्ठित संस्था छोड़कर विक्रम विश्वविद्यालय में क्यों आ गया ? तो एक ही उत्तर मिला; आगे बढ़ने की चाह में व्यक्ति कई तरह के समझौते कर लेता है। जो कार्य संतुष्टि मुझे 12 वर्ष तक राजस्थान विश्वविद्यालय में मिली, विक्रम विश्वविद्यालय में मुझे उसका अभाव नजर आया। लेकिन मेरा जिस प्रबंध अध्ययन संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर चयन हुआ था वहाँ स्थिति बेहतर थी क्योंकि वहाँ एमबीए पाठ्यक्रम 1989 में पहली बार चालू हुआ था अतः सारे प्राध्यापक गण भी नये नियुक्त हुये थे और देश के अलग–अलग हिस्सो से उनका चयन हुआ था। संकाय के निदेशक पद पर डॉ. पी.एन. मिश्रा गुड़गांव से आये थे, मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय से ज्वाइन किया था, डॉ. करूणेश सक्सेना सागर विश्वविद्यालय से, डॉ. पी.के. सिंह बिहार

से तथा दीपक गुप्ता इन्दौर से आये थे। डॉ. पी.एन मिश्रा तथा मेरे अलावा सभी संकाय सदस्य युवा तथा कुंवारे थे। मेरा उज्जैन प्रवास तो सिर्फ सात माह का रहा। परंतु वह एक अविस्मरणीय प्रवास रहा जिसका मैंने पूरा आनन्द लिया। मैं उज्जैन में अकेला ही रहा। छाया, प्रज्ञा और प्राची उदयपुर ही मेरे चाचाजी के पास रहे। उज्जैन में हम तीन प्राध्यापक (मैं, डॉक्टर करूणेश सक्सेना तथा संजय दूबे) एक ही मकान में ऋषि नगर में रहने लगे। बाकी प्राध्यापक गण भी नजदीक ही रहते थे। प्रतिदिन शाम को हमारे घर पर एक साथ गप–शप करने बैठना, समसामयिक विषयों पर लम्बी लम्बी चर्चाऐं करना और फिर गाने बजाने का कार्यक्रम और कभी–कभी सभी के साथ फ्री गंज स्थित गोपाल भोजनालय में रात का भोजन करना। ये क्रम मेरे पूरे प्रवास के दौरान निर्बाध चलता रहा। आज जब मैं कभी संस्मरणों के झरोखे में बीती जिन्दगी को देखता हूँ तो ये बिताया गया समय मुझे काफी सुकून देता है। कई बार रात का समय गुजारने के लिए हम सभी लोग महाकाल मंदिर के प्रांगण में बैठकर आरती के क्षणों का आनंद लेते तो कभी शिप्रा नदी के किनारे बने घाटों पर बैठकर देर रात चांदनी में झिलमिल करते नदी के पानी को देखते देखते अपने परिवार के सुख–दुख को साझा करते और देर रात घर लौट कर अगले दिन की कक्षाओं की तैयारी करने में जुट जाते। यह एक सुखद संयोग था कि हम सभी संकाय सदस्य उज्जैन से बाहर के थे इसलिए सभी के लिए उज्जैन एक नया पड़ाव था।

उज्जैन में प्रतिवर्ष एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का समारोह आयोजित किया जाता है जिसे कालीदास समारोह कहा जाता है। उज्जैन में एक कालीदास एकेडमी है जो विक्रम विश्वविद्यालय में ही स्थित है। यह एकेडमी मध्यप्रदेश सरकार द्वारा संचालित होती है और प्रतिवर्ष इस समारोह में राष्ट्रीय स्तर के कालाकारों, साहित्यकारों एवं संगीतज्ञों की गरिमामय उपस्थिति होती है और वे अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। संभवतः देश में किसी भी संस्थान द्वारा इस विशाल स्तर का सांस्कृतिक समारोह नहीं होता है। वर्ष 1990 का सात दिवसीय कालीदास समारोह जिसमें मैं पूरे सप्ताह उपस्थित रहा, मेरे जीवन का यादगार अवसर रहा जिसमें कुमार गंधर्व, हरीप्रसाद चौरसिया, बिरजू महाराज, पंडित रविशंकर जैसी जानी मानी हस्तियों की प्रस्तुतियां

देखने का अवसर मिला। इस सात दिवसीय समारोह को देखने के लिए प्रतिवर्ष हजारों लोगों की भीड़ जुड़ती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में कुछ प्रोफेसर एवं विभाग राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि बना लेते हैं, विक्रम विश्वविद्यालय में भी उस समय प्रोफेसर शिव मंगल सिंह सुमन जैसे प्रोफेसर रहे जो कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हिन्दी कवि और साहित्यकार थे। राजनीति शास्त्र विभाग में प्रो. रामसखा गौतम और सत्तर के दशक में भूगर्भ विज्ञान विभाग में प्रो. बाकणकर थे जो एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के भूगर्भ शास्त्री थे। उज्जैन में मेरा प्रवास करीब एक वर्ष ही रहा तथा मेरे साथ जितने भी संकाय सदस्यों ने वहाँ ज्वाइन किया, दो को छोड़कर सभी लोग दो वर्षों के भीतर वहाँ से अच्दी जगह पर निकल गये। डॉ. वर्गीज अमरीका में प्रोफेसर बन कर चले गये। करूणेश सक्सेना, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में, डॉ. पवन कुमार सिंह, भारतीय प्रबंध संस्थान इंदौर में, डॉ. पी.के शर्मा कोटा में तथा तत्कालीन संस्थान निदेशक प्रो. पी.एन. मिश्रा स्वयं भी देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर चले गये।

शिक्षा और साहित्य से जुड़े लोग अपने आस पास घट रही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से मानसिक और भावनात्मकरूप से जुड़े बिना नहीं रह सकते। इस अवधि के दौरान तीन महत्वपूर्ण घटनाओं ने मुझे प्रभावित किया और बहुत कुछ सिखाया। पहली घटना थी 1978 से 1989 के बीच पंजाब का उग्रवाद जिसने देश और संपूर्ण जनमानस को झकझोर कर रख दिया। एक ऐसा आन्दोलन जो किसी जाति या समुदाय के खिलाफ नहीं बल्कि व्यवस्था के खिलाफ था। एक ऐसा आन्दोलन जिसने हजारों युवाओ को हमसे छीन लिया और अंतिम परिणिति केरूप में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की भी शहादत देश ने देखी।

दूसरी घटना श्री राजीव गांधी का 1984 में देश का प्रधानमंत्री बनना। उनका प्रधानमंत्री बनना महत्वपूर्ण नहीं था। उससे अधिक महत्वपूर्ण था चुनावों में लोकसभा की 543 में 404 सीटे जीतना और उसके बावजूद 5 वर्ष तक सरकार न चला पाना। इसीलिए कहा जाता है कि नेतृत्व की जबर्दस्त शुरूआत होने का अर्थ उसकी अंतिम सफलता भी जबर्दस्त हो आवश्यक नहीं है।

तीसरी घटना श्री वी.पी. सिंह का प्रधानमंत्री बनना। वे 1989 में प्रधानमंत्री बने लेकिन सरकार ग्यारह महीने में ही गिर गई। कभी कभी अच्छे व्यक्तियों को सत्ता काफी मुश्किल और चुनौतीपूर्ण स्थिति में मिलती है। ऐसी स्थिति में वे व्यवस्था को कुछ अधिक दे नहीं पाते।

जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता और गुणवत्ता में इजाफा करता है तो व्यवस्था से इस बात की अपेक्षा करता है कि उसकी क्षमताओं का सही मूल्यांकन सही समय पर किया जाये। ऐसा नहीं होने पर कई बार अच्छे व्यक्ति संगठन छोड़ कर चले जाते हैं।

उज्जैन ज्वाइन करने से पहले ही मैंने मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में भी एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर आवेदन कर रखा था। उज्जैन प्रवास के दौरान ही मुझे उदयपुर से साक्षात्कार का पत्र आ गया। वैसे तो मैं उज्जैन में भी इसी पद पर कार्य कर रहा था, लेकिन मैं राजस्थान में ही वापस आने का इच्छुक था और यह एक अच्छा अवसर था जिसे मैं भुनाना चाहता था। साक्षात्कार के दो दिन पूर्व ही मैं उदयपुर आ गया था और कुलपति महोदय से मिलकर यह स्पष्ट किया कि मैं यहाँ किसी मौद्रिक लाभ या पदोन्नति की इच्छा से नहीं आना चाहता हूँ बल्कि राजस्थान में आने की इच्छा की वजह से मैं साक्षात्कार के लिए आना चाहता हूँ। कुलपति महोदय ने कहा कि तुम्हारे यहां चयन के अच्छे अवसर है। इसके बाद ही मैं साक्षात्कार के लिए उपस्थित हुआ।कुछ दिनों बाद मुझे पता चला कि मेरा चयन उदयपुर में हो गया है।

# 6.
# नया मंजर, नई दृष्टि

जिन्दगी में घुमक्कड़ बने रहने का अपना एक आनन्द है। मैं महान लेखक डॉ. राहुल सांकृत्यायन का फैन रहा हूँ क्योंकि लेखन के साथ–साथ उन्होंने पद यात्रा से पूरी दुनिया नाप ली। हर आगे बढ़ा हुआ कदम आपके लिए असीमित संभावनाओं के द्वारा खोलता है, साथ ही पिछले कदम की अपूर्णता और अधूरेपन का अहसास करवाता है। शैक्षणिक क्षेत्र में चाहे वह छात्र हो या शिक्षक, जितना बाहर की दुनिया देखता है उसके अवलोकन (Observation) की ताकत में बढ़ोतरी होती जाती है। ओशो ने कहा कि जितने अधिक आप दृष्य देखेंगे उतनी ही साफ आपकी दृष्टि होती जायेगी और धीरे–धीरे आप एक दृष्टा बन जाते हैं। जीवन में अलग–अलग दृष्य देखने की इच्छा ने मुझे जयपुर से विदा कर उज्जैन दिखाया और उज्जैन से विदा होकर मैं उदयपुर आ गया। जयपुर की तुलना में उज्जैन छोटा शहर था। विक्रम युनिवर्सिटी भी राजस्थान युनिवर्सिट की तुलना में छोटी थी लेकिन उज्जैन का अनुभव बिल्कुल अलग तरह का था। वहाँ मैंने युनिवर्सिटी और शहर दोनों जगह, सम्पूर्ण भारत के दर्षन किये। उत्तर और दक्षिण का ऐसा अनुपम संगम बहुत कम विश्वविद्यालयों में देखने को मिलता है। मेरे समय में वहाँ राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, उड़ीसा केरल, कर्नाटक महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व वहाँ की फैकल्टी में देखने को मिला। उसका एक कारण उज्जैन का भारत के मध्य में स्थित होना है, दूसरा महाकाल का मन्दिर जो बारह ज्योतिर्लिगों में से एक है उसका वहाँ स्थित होना भी उसे सम्पूर्ण भारत की आस्था का केन्द्र बना देता है। वहीं मैंने यह भी महसूस किया कि किसी भी स्थान या युनिवर्सिटी का छोटा या बड़ा होने का यह अर्थ नहीं है कि वहाँ पर प्रतिभाएँ भी उसी अनुपात में हों। विक्रम विष्वविद्यालय ने भी देष को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षाविद दिये है।

28 जून 1990 को मैंने मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर ज्वाइन किया। यहाँ ज्वाइन करने से पहले भी उदयपुर से मेरा गहरा रिश्ता रहा क्योंकि कई रिश्तेदार इसी षहर में रहते थे लेकिन युनिवर्सिटी ज्वाइन करने के बाद उदयपुर को करीब से देखने और समझने का अवसर मिला। जयपुर, दिल्ली, उज्जैन की खाक छान कर मैंने सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में जब ज्वाइन किया तो महसूस किया कि उदयपुर की फिज़ा में एक गहरी शान्ति है, मानो झील की सतह पर ठहरी हुई नमी हो। जहाँ झीले सिर्फ जल नहीं, आत्मा की गहराई है। फतहसागर की पाल पर टहलना यहाँ के जीवन के खास हिस्से की तरह है। स्थानीय लोग मानते है कि वहाँ न जाना सेहत के लिए वैसा ही है जैसे बिना नमक का भोजन। मानसून शुरू होते ही लोगों की जुबान पर एक ही चर्चा का विषय होता है कि फतहसागर कब पूरा भरेगा? जिस दिन झील के दरवाजे खोले जाते है पूरे शहर में उत्सव का माहौल हो जाता है। एक हजार वर्ष की जिस भव्य राजषाही व्यवस्था को इस शहर ने देखा है, जिया है उसके निशान आपको हर जगह मिलेंगे चाहे वह भाषा की नजाकत हो, पहनावे का सौन्दर्य या सिटी पैलेस जैसा महल। सुबह सूरज के निकलने के साथ ही पिछोला झील के किनारे पर शान्त बैठे लड़के, लडकियां, अपने लैप टॉप पर काम करते, कॉफी पीते म्गमबनजपअमे और कबूतरों को दाना डालते वरिष्ठ नागरिकः सब मिलकर सूरज का स्वागत करते नजर आते हैं। शाम ढलते–ढलते जैसे पूरा उदयपुर शहर फतहसागर की पाल पर डेरा डाल देता है। रात के आगोश में झील का हिलोरे मारता पानी और झील के किनारे हुस्न से इतराते चेहरे, दोनों ही जैसे अपनी जवानी की नई इबारत लिखने के लिए बेताब दिखाई देते है। जब मैं अपनी भरपूर जवानी को सम्हाल रहा था, उस समय उदयपुर आया लेकिन शहर ऐसा जजबाती कि कभी मुझे अपनी ढलती उम्र के बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिला क्यों कि चेतना के स्तर पर इस शहर ने मुझे पूरी तरह व्यस्त रखा और भावनात्मक और मानसिक स्तर पर पूरी तरह क्रियाशील। इसी का परिणाम है कि ना तो कभी अकेलेपन का अहसास हुआ ना ही किसी मानसिक द्वंद का। जहाँ एक तरफ खूबसूरत झीलें यहाँ की सुन्दरता को बढ़ाती है तो दूसरी तरफ शानदार अरावली पर्वतमाला जिसे इस

बात का अहसास है कि वह दुनिया की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक है (हिमालय से भी अधिक प्राचीन) तो वहीं हजारों वर्षों की एतिहासिक पृष्ठभूमि को समेटे हुए कितने ही महान और पराक्रमी योद्धाओं की कार्य स्थली और शरण स्थली भी ये पर्वतमाला रही है।

पृथ्वीराज चौहान, मोहम्मद गौरी, गजनवी, महाराणा प्रताप, महाराणा कुम्भा, और अकबर जैसे योद्धाओं के युद्ध कौशल को इसी पर्वतमाला ने देखा तो दूसरी ओर मां मीरा और पदमिनी की भक्ति और शक्ति को भी इसी पर्वतमाला ने देखा। मुझे प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सिलसिले में पिछले बीस वर्षों में उदयपुर से माउन्ट आबू सैकड़ों बार जाने का अवसर मिला और अरावली की पहाड़ियों के बीच से गुजरते हुए ऐसा लगता था जैसे ये पहाड़िया बहुत कुछ अपने भीतर समेटे हुए है लेकिन फिर भी पूरी तरह से गंभीररूप में अचल खड़ी है। बरसात के मौसम में गोगुन्दा, रणकपुर, रायता, देवला, झाडोल जैसे स्थान आपको स्वर्ग में होने का अहसास कराते है। ऐसा लगता है ऊटी, कोडाइकनाल जैसा मनोरम दृष्य इन्हीं पहाड़ियों में सिमट कर आ गया है। इन्हीं पहाड़ियों के बीच वो आदिवासी लोग भी हैं जो आज भी सभ्यता की रोशनी से कोसों दूर अपने भोलेपन और अभावों के साथ जिन्दगी को हंसते–हंसते जी रहे है।

विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन में ज्वाइनिंग की औपचारिकताऐं पूरी करते समय मुझे प्रशासनिक भवन बेहद खूबसूरत नजर आया। छोटी सी पहाड़ी की ऊचाई पर हरे रंग का तीन मंजिला प्रशासनिक

भवन खुला–खुला सा लग रहा था। यहाँ ज्वाइन करने के बाद मैं उस कॉलेज में आया जहाँ उस समय एम.बी.ए प्रोग्राम की कक्षाऐं लगा करती थी, उस कॉलेज का नाम था वाणिज्य एवं प्रबन्ध अध्ययन महाविद्यालय। आज भी उस कालेज का नाम वहीं है, ये बात अलग है कि अब वहां एम.बी.ए. की कक्षाऐं नहीं लगती है। कालेज की बाहरी दीवारें काले पत्थरों की बनी हुई थी लेकिन जब 6 सीढिया चढकर प्रबन्ध अध्ययन संकाय के कार्यालय में पहुँचा तो स्थिति बिल्कुल उलट लगी। भवन की छत के उपर बड़ी बड़ी मकड़ियों के जाले व पंखों पर अच्छी खासी मिट्टी जमी हुई थी। संकाय के निदेशक प्रो.ए.के सिंह के कमरे में भी नमी और सीलन आ रही थी। उनके कमरे के पास एक बरामदे में प्लास्टिक के पार्टिशन में मेरे बैठने की एक 5x6 फीट जगह बनाई गई जिसके बिल्कुल पास टॉयलेट था जिसकी भीनी–भीनी गंध हमेषा नथूनों में भरी रहती थी। कुछ दिनों के भीतर ही विश्वविद्यालय की संस्कृति एवं मान्यताओं सेरूबरू होने का अवसर मिलने लगा। जिस महाविद्यालय के भवन में MBA कार्यक्रम चल रहा था उसी में बी.कॉम तथा एम.कॉम की कक्षाऐं भी चला करती थी इस वजह से बी.कॉम की कक्षाओं के शोर व अन्य कार्यक्रमों की वजह से एम.बी.ए की कक्षाओं में भी बाधाऐं होती रहती थी। छात्र संघ के चुनाव के समय ये समस्याऐं और भी बढ़ जाती थी। कई बार कक्षा लेने के लिए खाली कमरे उपलब्ध नहीं होते थे। मैं जयपुर रहा या उज्जैन रहा, एम.बी.ए प्रोग्राम के लिए अलग से परिसर थे। यह प्रथम अवसर था कि मैं एक ही भवन में एम.बी.एन. की तथा बी.कॉम कक्षाऐं साथ–साथ चलते देख रहा था। मैंने तत्कालीन कुल्पति प्रो.आर.एन.सिंह तथा संकाय निदेशक प्रो.ए. के. सिंह से इस बारे में चर्चा की तो दोनो ने ही मुझे आश्वस्त किया कि शीघ्र ही मैनेजमेंट भवन अलग से बना दिया जायेगा। मेरा मानना है कि जहाँ भी MBA कार्यक्रम किसी अन्य स्नातक कार्यक्रम के साथ चल रहा है वो एम.बी.ए कार्यक्रम ऊपर नहीं उठ पाये।

90 का दशक वो दौर था जब एम.बी.ए. पाठ्यक्रम देश में बहुत कम स्थानो पर चलता था। देशभर में कुल 4IIMs थे, आज 21 IIMs हैं। राजस्थान में जयपुर, उदयपुर तथा जोधपुर में MBA पाठ्यक्रम चल रहे थे।यही वजह थी कि उदयपुर में देश के विभिन्न भागों से छात्र पढ़ने आते थे। दिल्ली, पटना, गुवाहटी, इन्दौर, मुंबई, जयपुर, कोलकाता जैसे

स्थानों से नियमितरूप से छात्र यहाँ आते रहते थे। एम.बी.ए की कक्षा में ही बहुसांस्कृतिक एवं बहुक्षेत्रीय वातावरण हमेशा मौजूद रहता था। मुझे अच्छी तरह याद है जब कक्षा के छात्र कभी ओणम, कभी बैसाखी तो कभी पौंगल जैसे पर्व मनाते रहते थे और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आसाम का बीहू डांस, गुजरात का गरबा या पंजाब का भांगडा काफी शौक से छात्र, छात्राऐं किया करते थे। पूरे एम.बी.ए. कार्यक्रम में हम दो स्थायी फैकल्टी मैम्बर थे। प्रो.ए.के सिंह जो निदेशक थे और दूसरा मैं स्वयं। उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि हम दो फैकल्टी मैम्बर मिल कर पूरा कार्यक्रम चला रहे हैं। लेकिन ये एक वास्तविकता है कि सरकारों का पूरा ध्यान कॉलेज और विश्वविद्यालय खोलना है ना कि शैक्षिक गुणवता के स्तर को सुधारना। कुछ समय बाद श्री अनिल कोठारी, करूणेष सक्सेना, हनुमान प्रसाद व मीरा माथुर ने भी ज्वाइन किया।

आप जिस व्यवस्था के अंग है, वह व्यवस्था उत्कृष्ट हो सकती है, साधारण हो सकती है या निकृष्ट हो सकती है लेकिन इन सबसे ऊपर यह बात है कि वह व्यवस्था आप को कितना दे पाती है या नया कुछ सोचने का कितना मार्ग प्रशस्त करती है। मैंने जब सुखाड़िया विश्वविद्यालय ज्वाइन किया तो मुझे लगा कि यह उस (राजस्थान वि. वि.) ब्राण्ड से छोटी है जिसे मैं छोड़ कर आया हूँ लेकिन यह छोटी ब्राण्ड मुझे कितना दे पायेगी यह प्रश्न ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। एक बात जो मेरे पक्ष में थी, वो थी मेरी उम्र। 32 वर्ष की उम्र में ही मेरा एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर चयन हो गया था, अतः एक लम्बा समय मेरे सामने था शैक्षिक क्षेत्र में कुछ कर दिखाने का। आपकी कुछ कर सकने या ना कर सकने की संभावना भी बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है आपको नेतृत्व किस तरह का मिला है। सुखाड़िया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर ए.के. सिंह जैसे कुशल व्यक्तियों का नेतृत्व मिला। प्रो. सिंह उस समय मेरे विभाग में ही निदेशक के पद पर कार्यरत थे और वो भी राजस्थान विश्वविद्यालय छोड़कर आये थे और अतः उनसे बरसों तक सीधा जुड़ाव रहा।

मेरे शैक्षिक जीवन का यह एक ऐसा दौर था जिसमें विश्वविद्यालय जीवन को करीब से देखने का अवसर मिला और वास्तविकता से रूबरू होने का अवसर मिला या यूं कहें कि सम्पूर्ण शिक्षा जगत का

अवलोकन करने का यह समय था। उदयपुर आने के कुछ दिनों बाद मुझे एक बात साफ तौर पर नजर अपने लगी कि विश्वविद्यालय का शैक्षिक माहौल औसत दर्जे का ही है। जब संकाय सदस्यों से सम्पर्क बढ़ाया तो एक विशेष बात नजर आई कि बहुसंख्यक संकाय सदस्य ऐसे है जिन्होंने अपनी स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर तक की पढ़ाई उदयपुर, भीलवाड़ा, बासंवाड़ा या आस–पास के कस्बों से की फिर इसी शहर के किसी निजी कॉलेज में शिक्षक की नौकरी कर ली और फिर इसी शहर के विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गये। एसी स्थितियों में विश्वविद्यालय शिक्षक बाहर की दुनिया को देख नहीं पाता, परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालय नये खून का स्वागत नहीं कर पाता और हमेशा इन ब्रिडिंग (In-breeding) की समस्या से जूझता रहता है। धीरे–धीरे एसी स्थिति में विश्वविद्यालयों में स्थानीय लोगों की भरमार हो जाती है और एक स्पष्ट राजनैतिक माफिया बनने लगता है और फिर वही होता है जो प्रो. प्रदीप खांडवाला ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Fourth Eye में लिखा कि आज के विश्वविद्यालय औसत दर्जे की संस्थाऐं (Centre for Mediocre) बन गई है।

मैंने इस बात को भी गहरे तक महसूस किया कि विश्वविद्यालय के आम शिक्षक से बातचीत के दौरान शैक्षिक जगत की वो चमक और ऊर्जा महसूस नहीं हुई जिसकी विष्वविद्यालय वातावरण से अपेक्षा की जाती है। नया कुछ लिखने या पढ़ने की आन्तरिक प्रेरणा के भी कभी

दर्शन नहीं हुए। इसका सीधा प्रभाव यह हुआ कि विश्वविद्यालय में बहुत ही कम ऐसे प्राध्यापक थे जिन्हें कभी देश या विदेश में व्याख्यान देने आमंत्रित किया गया हो या विदेशी विश्वविद्यालयों में शिक्षण के लिए आमंत्रित किया गया हो या उद्योग जगत ने कभी उनसे सहयोग मांगा हो। ऐसे शिक्षक सिर्फ ''नैक प्रोफेसर'' (NAAC Professor) या Ph.D Viva Professor बन कर रह गये। यह बात भी मैं पूरे दावे के साथ कह सकता हूँ कि किसी भी राज्य वि.वि. को देख ले। वहाँ 90 प्रतिशत शिक्षक ऐसे मिलेगे जिन्होंने अपने पूरे सेवा काल में दो हजार रूपये की पुस्तकें भी अपनी जेब से पैसे खर्च कर के नहीं पढी होगी, ना ही पांच बढिया विश्वस्तरीय पुस्तकों को लाइब्रेरी में खरीदने के लिए सिफारिश की होगी। जरूरत इस बात कि है कि आज का षिक्षक अपने उपर काम करे। वैसे यह कहानी सिर्फ वि.वि. षिक्षकों की नहीं है, अगर दृष्टि को व्यापक करते हुए विश्व के परिदृश्य पर देखें तो ऐसा लगता है कि वर्तमान दुनिया ही हल्के और औसत लोगों के हाथ में है। अधिकांश हल्के लोग राष्टाध्यक्ष बने हुए है, हल्के लोग ही धर्म गुरु, हल्के लोग मीडिया में हैं, हल्के पत्रकार है, हल्के नेतागण। इस युग की सबसे बड़ी त्रासदी है प्रामाणिक और ठोस व्यक्तित्वों का सम्पूर्ण अभाव। विश्व और व्यापक दृष्टि किसी के पास नहीं है। सभी प्रपनी मोमेंटरी किंक में डूबे हैं। तात्कालिक थ्रिल और क्षणिक एक्साइटमेंट वर्तमान दुनिया का जीवन मंत्र बन गया है। फिर वह चाहे संस्थान हो, शिक्षक हो या नौकरशाह। हर आंख खुद पर इतनी अधिक झुकी है कि दूसरा इन्सान दिख पाना असंभव हो गया है। सुंदर से सुंदर चेहरे सामने से गुजरते हैं मगर किसी के चेहरे में गहराई नहीं दिखती। जिम में तराशे शरीर दिखते है मगर व्यक्तित्व की गहराई नहीं आ पाती। गहराई तो गहरे जाने से ही आती है। यह चेत जाने की घड़ी है। इस चेतना के रथ को गति देने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका शिक्षक को ही निभानी होगी तभी जाकर आने वाली नस्लों को एक बेहतर व्यवस्था देने का हमारा सपना हम पूरा कर पायेंगे।

उदयपुर आकर मैंने अपना अच्छा खासा ध्यान शोध पत्रों की संख्या बढ़ाने पर लगाया जिसका परिणाम यह रहा कि देश के नामी अखबारों और पत्र पत्रिकाओं में मेरे लेख प्रकाशित होते रहे है। मैंने उदयपुर आकर MBA में एक नये विषय Organisational Behaviour का

अध्यापन शुरु किया। विषय मेरे लिये नया था लेकिन समय के साथ साथ मैं उस विषय में रमता गया और वो विषय मेरी पहचान बन गया। उसी विषय की बदौलत मुझे कॉरपोरेट सैक्टर में प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने के अवसर मिलने लगे। यही वह समय था जब मैं उच्च शिक्षा जगत की परदे के पीछे की वास्तविकता से भी रूबरू होने लगा था: जैसे प्रोफेसर कितनी तैयारी के साथ अपनी क्लास में जाते है? छात्र उच्च शिक्षा के मंदिर में कितनी गंभीरता के साथ आते है? क्या एकेडेमिक कौंसिल, कोर्सेज कमेटी तथा बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट जैसी महत्वपूर्ण इकाइयों में सदस्यगण पूरी गंभीरता से चिन्तन करते है? क्या कुलपति वास्तव में कुल का संवर्द्धन करने की हैसियत रखता है? विभिन्न शैक्षिक पदों के साक्षात्कार के समय विश्वविद्यालय चयन बोर्ड कितनी गंभीरता और संजीदगी के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह करता है? मैं जितने गंभीरता से उन तथ्यों पर विचार करता, कोई सन्तोषजनक उतर मस्तिष्क में नहीं आ पाता था।

राज्य के विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की तरफ से कई बार यह तर्क भी दिया जाता रहा है कि विश्वविद्यालयों में आस–पास के गांवों के तथा कम प्रतिशत वाले या कम प्फ वाले बच्चे प्रवेश लेते है इसलिये अच्छे शैक्षिक या रोजगार परक परिणाम नहीं मिल पाते। इससे अधिक भौंडा तर्क कोई हो नहीं सकता। ऐसे व्यक्तियों को मैं एक उदाहरण देता हूँ कि इसी देश के सुदूर गावों और कस्बों के औसत बच्चे भारतीय सैना में भर्ती होते है और दो वर्ष के प्रशिक्षण के बाद वही बच्चे विश्व के सर्वश्रेष्ठ सैनिक बन जाते है। अगर भारतीय सेना औसत दर्जे के बच्चों के साथ ये कीर्तिमान बना सकती है तो विश्वविद्यालय के शिक्षक ऐसा क्यों नहीं कर पाते? इसी संदर्भ में मुझे महान लेखक और कवि अज्ञेय का कथन याद आता है जब उन्होंने कहा था कि आजादी के बाद बहुत कम चिन्तन ऐसा उभरा है जिसे कालान्तर में महान चिन्तन के नाम से जाना जाये और इस विषम स्थिति को पैदा करने में शिक्षकों का भी अहम योगदान रहा है। बड़े–बड़े समारोह, सेमिनार, कान्फ्रेस प्रतिवर्ष आयोजित होते हैं उनमें मुख्य मुद्दा बजट होता है ना कि सोच की गुणवता। 1990 के दशकऔर बाद में मैंने कई विदेश यात्राऐं की उनमें कुछ तो विदेशी विश्वविद्यालयों में अध्यापन के निमंत्रण की वजह से और कुछ सैमिनार और कान्फ्रेंस की वजह से।

वर्ष 1997 में एक संगठन अस्तित्व में आज जिसका नाम था South Asian Mnagement Forum जिसका मुख्यालय हैदराबाद में रखा गया और इस संगठन के पीछे एक विख्यात मैनेजमेन्ट प्रोफेसर धरनी सिन्हा का हाथ था। इसकी पहली कान्फ्रेंस भूटान (थिम्पू) में हुई थी। इस कान्फ्रेंस में कई देशों के प्रतिनिधी शामिल हुए थे। मैंने भी अपना शोध पत्र भेजा था जिसे स्वीकार कर लिया गया। मैंने इससे पहले भूटान की यात्रा नहीं की थी इसलिए मैं इस कान्फ्रेंस के प्रति विशेष उत्साहित था। मुझे जाते समय दिल्ली से थिम्पू की सीधी फ्लाइट मिली जो Druck Airways की थी जो कि भूटान की सरकारी विमान कम्पनी है। भूटान में एक ही हवाई अड्डा है जो पारो में स्थित है। पारों का हवाई अड्डा विश्व के उन गिने चुने हवाई अड्डो में से एक है जहाँ पर लैंडिग में काफी सतर्कता की जरूरत होती है। दिल्ली से पारो की हवाई यात्रा करीब 2 घण्टे की होती है लेकिन उसमें से एक घण्टे की यात्रा जिसमें विमान बहुत संकरी भूटान वैली से गुजरता है बड़ी रोमांचक होती है। पारो भूटान का दूसरा सबसे बड़ा शहर है और यहीं हवाई अड्डा भी है। पारो हवाई अड्डे से थिम्पू की एक घण्टे की सड़क यात्रा हिमालय की वादियों से होते हुए गुजरती है। चीड़ देवदार जैसे घने, लम्बे पेड़ और नीचे बहती पारो नदी किसी भी प्रकृति प्रेमी को धरती पर स्वर्ग का अहसास करवा देती है। थिम्पू हिमालय की गोद में बसा खूबसूरत शहर है। मैं जिस तात्संग होटल में ठहरा था वो एक पहाड़ी पर स्थित थी और कमरे के पर्दे हटाते ही बर्फ से ढ़की हिमालय की वादियां बड़ा सुकून देती थी। हमारी कान्फ्रेंस Royal Institute of Management में हो रही थी जो कि भूटान की एकमात्र मैनेजमेन्ट इस्टीटयूट है और नदी के किनारे बनी हुई है। भूटान विश्व का एकमात्र देश है जहाँ कार्बन उत्सर्जन जीरो प्रतिषत है और उसकी एक मात्र वजह है वहाँ के घने जंगल और वनस्पति। यहाँ कई बौद्ध मठ हजारों वर्ष पुराने हैं और घने पहाड़ों के बीच में स्थित है। भूटान की समुद्रतल से उचाई 7000 मीटर है उस की सीमाऐं एक तरफ चीन और दूसरी तरफ भारत से मिलती है। भूटान की राजषाही ने वहाँ के निवासियों को एक लम्बे अरसे से विष्व से बिल्कुल अलग थलग रखा जिसका एक उदाहरण है कि वहाँ वर्ष 2000 तक टैलीविजन नहीं आया था। उस कान्फ्रेस में वैसे तो सभी दक्षिण एशियाई देशों के नामचीन

लोगों ने भाग लिया था लेकिन भारत का दल सबसे बड़ा था जिसमें करीब 90 लोग थे। उनमें प्रमुख थे मनिपाल से प्रो. नागब्रह्मा, अहमदाबाद से प्रो.ओ.पी गुप्ता, हैदराबाद से प्रो. धरनी सिन्हा, बी.एल माहेश्वरी, पाकिस्तान से प्रो. कली मुल्ला, प्रो. जाफरी जैसे लोग। सारे शोध पत्रों की क्वालिटी एक से बढ़ कर एक।

तकनीकी सत्र में बैठने के बाद वहाँ से हिलने की इच्छा भी नहीं होती थी। पहले दिन भूटान किंग के शाही पैलेस में ही डिनर का आयोजन किया गया था। उस डिनर का हर पहलू शाही अन्दाज लिये था जैसे दुनिया के हर देश की सबसे बढिया शराब वहाँ थी तो दूसरी ओर करीब 20 देशों की बढिया वेज और नॉन वेज डिशेज। चीन, पाकिस्तान, बांगलादेश, मंगोलिया जैसे देशों के राजदूत भी वहाँ उपस्थित थी सबसे बड़ा आकर्षण थे भूटान के किंग श्री वांगचूक की मौजूदगी।

वर्ष 1999 में मैं कोलम्बो (श्रीलंका) में एक प्रतिष्ठित संस्था Institute of Technological Studies जो की अमरिका की टैक्सास टैकनिकल युनिवर्सिटी से भी सम्बद्ध थी का निदेशक बनकर चला गया। बड़ा सुन्दर देश है श्रीलंका। वहाँ के सारे प्रमुख शहरों में भ्रमण किया और अच्छी तरह से देखा, जिसमें कोलम्बों, गॉल, त्रिंकोमली, कैन्डी, आदि प्रमुख हैं। निहायत ही खूबसूरत देश जिसमें चारों तरफ जबर्दस्त हरियाली और साल का 40 ईंच वर्षा का औसत। बेहतरीन समुद्री किनारे। मेरी इन्स्टीटयूट कोलम्बों शहर के मध्य किरिमण्डला मावठा में स्थित थी। उसी इस्टीटयूट परिसर में मुझे ठहरने के लिए कमरा मिल गया तथा इस्टीटयूट से सटा ओएसिस हस्पीटल था जिसके मैस में मैं भोजन करता था। मैस हॉस्पीटल की आठवी मंजिल पर स्थित था। जहाँ से पूरे कोलम्बो शहर का बड़ा ही मनोरम दृश्य दिखता था जिसे मैं आज तक विस्तृत नहीं कर पाया। प्रत्येक शनिवार व रविवार को मैं कोलम्बों के दूसरे विश्वविद्यालयों में विजिटिंग लैक्चर हेतु चला जाता था। श्रीलंका में मैंने जीवन में पहली बार युवा वर्ग को इतने उन्मुक्त व स्वच्छंद जीवन शैली जीते देखा जैसी मैंने दिल्ली, मुंबई में भी नहीं देखी थी। श्रीलंका के मूल निवासी सिंहली है तथा भारत से गये हुए तामिल नागरिक भी है। सिंहली नागरिक काफी खूबसूरत व गोरे चिट्टे लोग हैं जबकि तमिल शारीरिकरूप से मजबूत परन्तु पक्के रंग के होते

है। इस्टीटयूट के प्रेसिडेंट डॉ. एदरीसिंगे थे। उनके पूरे परिवार से मेरा काफी आत्मीय संबंध हो गया था। मेरे प्रवास के दौरान वो देश अपने अस्तित्व के सर्वाधिक कठिनतम दौर से गुजर रहा था जिसका मैं भी साक्षी रहा। ये वो दौर था जब श्रीलंका में तमिल समस्या ने विकरालरूप ले रखा था और तमिल इलम नाम के स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना की मांग को लेकर LTTE उग्रवादियों ने श्रीलंका सरकार को जबर्दस्त चुनौती दे रखी थी। कोई दिन ऐसा नहीं होता जब कोलम्बो, जाफना, बाबुनिया त्रिंकोमली या कैण्डी में बम धमाके ना होते हों। पूरे देश में अजीब सी दहशत व डर का माहौल था जिसे मैंने बहुत करीब से देखा और महसूस किया। दहशत का कैसा महौल था इसी को लेकर एक घटना साझा कर रहा हूँ। कोलम्बो के जयवर्द्धन विश्वविद्यालय ने एक दिन मुझे भाषण देने के लिये आमंत्रण दिया। शनिवार का दिन था प्रातः 11 बजे तक भाषण समाप्त कर मैं वापस मेरी इन्स्टीटयूट की तरफ कोलम्बो सिटी बस में ही बैठ कर रवाना हो गया। रास्ते में एक बड़ा अच्छा बाजार था जिसे बोरैल कहते है बस में चलते–चलते मुझे ख्याल आया कि कुछ फल–फूल और दूसरा सामान भी लेला है अतः मैं बीच रास्ते में ही बोरैल स्टेशन पर उतर गया। जिस बस से मैं उतरा था सिर्फ 2 मिनट बाद ही करीब 50 मीटर चलने के बाद उस बस में जोरदार विस्फोट हुआ और 7 लोगों की मौत हो गई। मैंने मौत को इतने करीब से और वो भी विदेशी धरती पर पहली बार देखा। कौन सा क्षण आपका अंतिम हो जाये और कौनसा कदम आपकी उम्र को बढ़ा दे यह सभी संयोग पर निर्भर करता है। मुझे महान कवि गोपाल दास नीरज की लाइने इस संदर्भ में अक्सर याद आती हैः

*जीवन अपना काटिये हर दिन अन्तिम जान*
*अन्तिम दिन कब आयेगा, कोई सका न जान।*

करीब 6 माह का कोलम्बो प्रवास शैक्षिक दृष्टिकोण से एक सुखद प्रवास सिद्ध हुआ। बड़े अच्छे छात्र, छात्राऐं जिनकी अंग्रेजी में उत्कृष्ट संवाद शैली। उनका मेरे साथ जो उनका सम्बन्ध बना वो आज तक कायम है। कोलम्बो मे मेरे साथ मलेशिया, इरान, अमरिका आदि देशों के कई प्रोफेसर थे। मैंने वहाँ महसूस किया कि टीचिंग अगर आपकी Passion है और अगर उस Passion की वजह से आप टीचिंग में आये

हैं तो आप एक अच्छे प्रोफेसर बन सकते है। जिस दिन देश के युवा वर्ग में टीचिंग एक सपना हो जायेगा उस दिन टीचिंग की स्थिति अपने आप बेहतर हो जायेगी। मैं जब कोलम्बो मे था, पत्नि छाया व परिवार उदयपुर में ही थे। छाया उस समय बी.एन कॉलेज में ऐसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थी। बेटी प्रज्ञा और प्राची सेन्ट मेरीज स्कूल उदयपुर में पढ़ रही थी वे बेटा प्रतीक सेन्ट पॉल स्कूल का छात्र था।

कोलम्बो में अपना 6 माह का कार्यकाल पूरा करके मैंने वापस सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर ज्वाइन कर लिया। ज्वाइन करने के साथ ही सुखाड़िया विश्वविद्यालय में प्रोफेसरों के पद पर पद्दोन्नति की प्रक्रिया सरकार द्वारा प्रारम्भ कर दी गई। मैंने भी मैनेजमेन्ट विषय में उक्त पद पर अपना दावा प्रस्तुत कर दिया। काफी लम्बे समय से मैं प्रोफेसर के पद प्राप्ति की प्रतीक्षा में था और अन्त में वर्ष 2001 में मुझे प्रोफेसर पद पर पद्दोन्नत किया गया। पद्दोन्नत होने के साथ ही मुझे महान मनोवैज्ञानिक मास्लों जिसे कालान्तर में प्रबन्ध वैज्ञानिक के नाम से संबोधित किया गया की याद आई जिसनें Hierarchy of Needs जैसा अभिप्रेरणा का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दुनिया को देकर समझाया कि पद्दोन्नति या उच्च पद की आकांक्षा भी व्यक्ति की एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आवश्यकता होती है। वर्ष 2001 आते–आते तीनों बच्चे प्रज्ञा, प्राची और प्रतीक भी बड़े हो गये और समाज का दायरा भी बढ़ने लगा था। छाया की पी.एच.डी हो चुकी थी और वो उदयपुर में ही एक निजी शिक्षण संस्थान बी.एन कॉलेज में प्राध्यापक बन चुकी थी। वैसे तो मैने जब से सुखाड़िया विश्वविद्यालय ज्वाइन किया, विश्वविद्यालय परिसर में ही मुझे आवास मिल गया था लेकिन वर्ष 2001 में मुझे बड़ा आवास आवंटित हो गया। एक प्रोफेसर को जीवन में कई आत्मिक सुख मिलते है। उनमें से एक विश्वविद्यालय परिसर में आवास मिलना भी है जो आप के कार्य क्षेत्र से सटा होता है।

इस समय तक मैं अपनी उम्र के चालीस वर्ष पार कर चुका था। किसी भी व्यक्ति के जीवन में 40 के आस पास की उम्र काफी महत्त्वपूर्ण होती है। यही वह समय होता है जब आप की जीवन यात्रा नये गन्तव्यों की तलाश में कुछ नये चेहरों पर टिकती है, कुछ नये शख्स आपको प्रकाश स्तंभ की तरह नजर आने लगते हैं। और आपको

मानसिक और भावनात्मकरूप से प्रभावित करने लगते है, कभी–कभी एसा लगता है कि जिन्दगी आपको हंसाना चाहती है लेकिन वो चेहरे आपको रूलाते हैं जिन्हें आप जिन्दगी समझने लगते है लेकिन वो आपकी जिन्दगी में होते नहीं हैं। इन सभी स्थितियों और मानसिक द्वन्द्व से मैं भी उसी तरह गुजरा हूँ जैसे आम आदमी गुजरता है। इन्हीं वर्षों में मेरे कुछ शोध छात्र/छात्राओं का भी मुझसे काफी गहरा भावनात्मक सम्बन्ध बना जो आज भी बरकरार है उनमें पायल, आनन्दिता चटर्जी, क्षमा और इन्दुराव प्रमुख है। मेरे कई MBA तथा शोध छात्र काफी उच्च पदों पर आसीन रहे हैं जिनमें भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, कुलपति, राष्ट्रों के राजदूत, बड़ी कम्पनियों के अध्यक्ष तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी शामिल है। मेरा ये मत है कि उच्च शिक्षण संस्थाओं में एक रिसर्च गाइड व रिसर्च स्कॉलर के बीच का जो सम्बन्ध है बनता है वो जीवन्त पर्यन्त जीवन्त और यादगार समय जैसा होता है जिसकी मधुर स्मृतियां दोनों को ही जीवन भर गुदगुदाती रहती है। मेरे कई रिसर्च स्कॉलर ऐसे भी है, जिस उम्र में वो रिसर्च कर रहे थे उस उम्र से बड़े अब उनके बेटे–बेटी हो गये हैं और आज भी उनसे ऐसे ही सम्बन्ध है जैसे तीस चालीस वर्ष पूर्व रिसर्च के समय थे। पिछले कुल वर्षों में इस क्षेत्र में भी गिरावट महसूस की गई है, जिसकी एक प्रमुख वजह रिसर्च गाइड का अपने स्कॉलर से ढेर सारी अपेक्षाऐं पालना है और वो अपेक्षाऐं जब सीमाऐं लांघती है तब ये सम्बन्ध अपनी पवित्रता खो देता है। इसी कारण अपना रिसर्च पूरा होते ही रिसर्च स्कॉलर अपने गाइड को गालियां देने लगता है।

मेरे शोध छात्रों में एक नाम है आनन्दिता चटर्जी। आनन्दिता चटर्जी उदयपुर में एक संस्थान से MBA कर रही थी। मैं जब उसके संस्थान में एक भाषण देने गया तब उससे मेरा परिचिर्य हुआ। एक दिन युनिवर्सिटी में वो मेरे ऑफिस में आई और कहने लगी की सर मुझे Ph.D करवा दीजिये। उस समय उसका विवाह हो चुका था। उसका रिसर्च से कोई लेना देना नहीं था और पूरी तरह से वो घरेलू और गृहस्थी में रमी हुई लड़की थी, ना ही उसका टीचिंग से कोई लेना देना था। यह वर्ष 2006 की बात है। लेकिन मैंने उसके भीतर एक आग देखी और मुझे लगा कि इस लड़की पर अगर मेहनत की जाए

तो बहुत अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। वर्ष 2007 में उसका Ph.D में रजिस्ट्रेशन हुआ। बहुत अच्छी तरह से उसने अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया। उसकी संवाद शैली अच्छी थी और साथ में आत्मविश्वास। वर्ष 2009 में मैंने मानव रचना युनिवर्सिटी, फरीदाबाद जब ज्वाइन किया तब मैंने असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर उसको नियुक्त किया और वर्ष 2010 में उसे Ph.D भी हो गई। उसके बाद उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। आज वो कॉरपोरेट सैक्टर में बड़े–बड़े संगठनों के ट्रेनिंग कार्यक्रम आयोजित करवाती रहती है उनमें Indian oil, College of Military Engineering, Administrative Staff College of India, Quality Council of India, Scope आदि जाने पहचाने नाम हैं। अगर आपने अपने ऊपर कुछ काम किया है तो आपका दायित्व भी बनता है कि आप अगली पीढ़ी पर भी कुछ काम करें और उन्हें अभिप्रेरित करें और ऐसे अभिप्रेरित व्यक्तियों पर थोडी सी दिल से मेहनत कर ली जाए तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने आते हैं जो कि आपको आत्मिक सन्तोष देते है।

इसी तरह एक शोध छात्रा क्षमा शर्मा रही है, जिसने मेरे साथ शोधकार्य किया और आज कई अच्छे राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों से जुड़ी हुई है और उनके शिक्षण और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहभागिता करती रहती है।

चालीस के दौर में ही एक ऐसा समय भी आता है जब कि आपकी पुरानी मान्यताऐं, अवधारणाऐं खण्डित होने लगती है और आपकी वैचारिकी परिपक्व होते हुए एक नये स्तर को छूने लगती है। किसी पंथ या वाद या व्यवस्था या व्यक्तित्व से आप अपने आप को नजदीक पाते है, उसका मोहपाश आपको जकड़ने लगता है। उसके सामने सारी पुरानी मान्यताऐं चाहे वह धार्मिक हो या सामाजिक ढहती नजर आती है। वर्ष 2000 के बाद मैनें ओशो को पढ़ना चालू किया या यूं कहें संवाद प्रारम्भ किया क्यों कि जब आप किसी को पढ़ रहे होते हैं तो एसा लगता है आप उससे संवाद कर रहे है और वो महापुरुष आपके सामने बैठा है। ओशो को पढ़ने के बाद अहसास होने लगा कि अगर ज्ञान को तर्क की कसौटी पर रख कर नहीं परखा गया है तो फिर एक नये और ऊचे आसमान को नहीं छुआ जा सकता। उससे भी सरल शब्दों में कहूँ तो ओशो का चिन्तन और दर्शन जीवन जीने की कला

है। ओशो एक सोच है जो कब आपके मनोमस्तिष्क पर छा जाती है, आपको पता ही नहीं लगता। ओशो मेरी जानकारी के हिसाब से भारत के इतिहास के सबसे बड़े विचारकों में से एक है। जिस संयुक्त राज्य अमरीका ने ओशो को जेल में डाल दिया उसी देश की टाइम मैगजीन ने विश्व के सौ सबसे प्रभावशाली व्यक्तियों की सूची में ओशो को स्थान दिया। जिस तरह से ओशो ने महावीर की व्याख्या की ऐसी व्याख्या करना अच्छे खासे जैन सन्तों के लिए भी कठिन है, जिस तरह कृष्ण की व्याख्या की, ऐसी व्याख्या करना हिन्दु सन्त समाज के लिए भी कठिन है। जिस तरह कुरान की व्याख्या की वैसी व्याख्या करना मुस्लिम मौलवियों के लिए भी कठिन कार्य है। ओशो के उदाहरण, उनके शब्द, सोच का तरीका, जीवन के प्रति उनका उत्साह उनकी ललक सारे नियमों को तोड़ देने वाली उनकी विचारधारा और हिम्मत ने मेरी सोच की दिशा और प्रवाह दोनों को बदल कर रख दिया। जब जब श्रोताओं ने मेरे भाषणों का समर्थन किया या तालियां बजाई तो उसके पीछे बहुत हद तक ओशो का चिन्तन और सोच ही था।

महान कवि स्व. गोपालदास नीरज दूसरी ऐसी शख्सियत है, जिसने मुझे चिन्तन के स्तर पर संवारा और हमेशा उत्साहित रखा। मैंने उनसे व्यक्तिश एक बार अलीगढ़ में उनके निवास पर मुलाकात की और कवि सम्मेलनों में कई बार बहुत नजदीक से सुना। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसे देखना और सुनना मुझे हमेशा असीम सुख और तृप्ति देता था। जीवन के हर रस को उन्होंने जिया भी और गीतों में ढाला भी। केकड़ी में, अजमेर में, जयपुर में हर जगह नीरज जी को ''कारवां गुजर गया गुबार देखते रहे'' गीत गाते देखा, सुना और उनकी भाव भंगिमा को देखा। लम्बा गोरा, छरहरा बदन, लम्बे बिना कंघी किए बाल और उस पर तरन्नुम में उनका गीत पढना किसी भी पुरूष या महिला को सम्मोहित करने के लिए काफी था। मैंने उन्हें उनकी युवावस्था और वृद्धावस्था दोनों स्तरों पर गाते हुए देखा लेकिन उनकी भीतर की आग और लय बराबर बनी रही। उनकी लिखी लाइनेः

हम तो इतने बदनाम हुए जमाने मे
सदियां लग जायेगी तुम्हे हमे भुलाने में

जब सुनी तो अहसास हुआ कि गुमनामी से बदनामी बेहतर है। दूसरे शब्दों में कहूं तोः आप मुझे प्यार कर सकते हैं या घृणा कर सकते हैं पर मुझे खारिज नहीं कर सकते।

मेरे जैसे हजारो लोग जो शिक्षा और साहित्य से जुड़े है उनके लिए नीरज की लिखी ये लाइने भीतर तक उन्हें झकझोर जायेगीः

आत्मा के सौन्दर्य का शब्दरूप है काव्य
मानव होना भाग्य है, कवि होना सौभाग्य

पन्द्रह वर्ष की आयु में अपनी प्रेमिका को दूसरे के संग विवाह करते विदा होते हुए देखा और गीत लिखा ''कारवां गुजर गया'' और इस कालजयी गीत की वजह से आने वाले पन्द्रह सौ वर्षों तक नीरज को याद किया जायेगा।

# 7.
# कक्षा के भीतर के अनुभव

विश्वविद्यालय शिक्षण की एक खासियत है कि हर क्लास आपके लिए रोमांच से भरी होती है। कई बार छात्रों के प्रश्न आपको हैरत में डालने वाले होते है और कई छात्रों के कमेन्ट आपको जीवन भर याद रहते है। कुछ ऐसे ही चुनिन्दा दृष्टान्त मुझे आज तक भी याद है। ये राजस्थान विश्वविद्यालय की बात है। मैं कामर्स कॉलेज के स्टाफरूप में बैठा हुआ था। तभी कुछ छात्र एक प्राध्यापक के पास आये और कहा सर ये पीरियड आपका है और अभी तक आप क्लास में नही आये'' प्राध्यापक ने कहा सॉरी, मेरी घडी 10 मिनट पीछे चल रही है इसलिए मैं लेट हो गया। इस पर एक छात्र ने कहा ''सर अगर आपकी घडी बन्द हो जायेगी तो फिर क्या आप क्लास में ही नहीं आयेंगे?

एक अन्य घटना मेरे साथ हुई। मैं एम.कॉम फाइनल के कुछ छात्रों के साथ एक पार्टी में एन्जॉय कर रहा था तभी मैंने एक छात्र को पूछा ''राज, तुम्हारे एम.कॉम प्रीवियस में कितने प्रतिशत अंक बने, ''उसने कहा सर 58%। मैंने कहा अगर थोड़ी और मेहनत करते तो फर्स्ट डिविजन बन जाता। उसने कहा ''सर मेरा तो फर्स्ट डिविजन ही बनता लेकिन मैंने कुछ क्लासेज अटैंड कर ली इसलिए मैं कन्फयूज हो गया था और फर्स्ट डिविजन नहीं बन पाई।

मैं सुखाड़िया विश्वविद्यालय में एम.बी.ए की कक्षा में पढ़ा रहा था। दो छात्र कुछ देर से कक्षा में आये तो मैंने उन्हें मना कर दिया और कहा कि लाइब्रेरी में जा कर बैठिये, मैं पीरियड के बाद तुमसे मिलूंगा। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि दोनों छात्र, कक्षा के बाहर ही खड़े हैं। मैंने बाहर जाकर उनसे पूछा '' आप लाइब्रेरी में जाकर क्यों नहीं बैठे ? इस पर एक छात्र ने कहा ''सर हम दोनों अपने मोबाइल में आपका लैक्चर बाहर से ही रिकॉर्ड कर रहे है आप का भाषण बहुत अच्छा होता है।''

मैं कुछ समय के लिए दिल्ली के पास एक प्राइवेट विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनकर चला गया। थोड़े समय बाद युनिवर्सिटी में छ।।ब की एक टीम निरीक्षण करने आई। निरीक्षण के बाद भी युनिवर्सिटी को रैंक या ग्रेड दी जाती है जैसे । ग्रेड या ठ ग्रेड आदि। मुझे एक मेरे छात्र ने कहा सच बताइये सर अगर इस युनिवर्सिटी को । ग्रेड मिल जायेगी तो क्या आप अपने बच्चे का एडमिशन यहाँ करवा देंगे? उसका तर्क था कि बाहरी ग्रेड या तामझाम के बजाय जनता का विश्वास ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

जब भी कभी विश्वविद्यालय में किसी नियुक्ति होती है तो उसे सौरूपये के स्टाम्प पेपर पर घोषणा करनी पड़ती है कि वह किराये के मकान में रहता है। उस स्टाम्प पर मकान मालिक का नाम, पता किराये की राषि सभी कुछ लिखा जाता है। ऐसा स्टाम्प पेपर निर्धारित वैन्डर के पास ही मिलता है। ऐसा स्टाम्प पेपर विश्वविद्यालय में जमा कराने पर ही प्राध्यापक को मकान किराये की निर्धारित राशि वेतन के साथ मिलती है। राजस्थान विश्वविद्यालय में मेरे साथ मेरे मित्र ने भी ज्वाइन किया। उसे स्टाम्प पेपर लेना था। स्टाम्प पेपर विक्रेता जौहरी बाजार में था। उसकी चने, मूंगफली की दुकान थी, उसी दुकान से वो स्टाम्प भी बेचता था। उसी दुकान से वो प्राध्यापक सौरूपये का स्टाम्प लेकर आ गये। अगले दिन जब वो प्राध्यापक क्लास में गये तो ब्लैक बोर्ड पर लिखा था'' प्रोफेसर के पास पैसे की भारी तंगी है, आजकल चूने मूंगफली खाकर गुजारा कर रहे हैं।

मैंने कुछ समय के लिए विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में ऐसासिएट प्रोफेसर के पद पर कार्य किया। मैं एम.बी.ए की क्लास में एक लैक्चर ले रहा था। उस क्लास में दायी तरफ सारे लड़के बैठे थे और बायी तरफ सारी लड़किया बैठी हुई थी। लैक्चर के बीच में मैने कहा किसी को कोई प्रश्न पूछना है? तो एक लड़का खडे होकर बोला सर एक गंभीर समस्या है, हम गरीब लड़कों का भी ध्यान रखिये। आप तो बांई तरफ देखकर खूबसूरत चेहरों को ही पढ़ा रहे हैं।

अक्सर ये कहा जाता है और काफी हद तक सही भी है कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों पर उम्र का असर कम नजर आता है। उसके प्रमुखतः दो कारण है पहला यहाँ आपको नौकरशाही या एक व्यक्ति की तानाशाही देखने को नहीं मिलेगी। आप अपनी क्लास अच्छी

तरह से ले लो फिर आपको कोई समस्या नहीं आयेगी। दूसरा आप हमेशा छात्रों या नये खून के साथ संवाद करते रहते है और ये चीज आपको हमेशा युवा बनाये रखती है। अप हर दिन छात्रों के साथ हंसी मजाक कर रहे हैं, गा रहे है, नाच रहे है क्लास भी ले रहे है और ये सारी चीजे आपको नकारात्मकता से दूर ले जाती है। कई बार तो ऐसा भी होता है गंभीर से गंभीर मुद्दों पर चर्चा करते समय भी हास्य निकल आता है।

एक बार कुलपति कॉलेज का औचक निरीक्षण करने पहुँच गये। पहले वो प्राध्यापकों से मिले फिर कर्मचारियों से और फिर कुछ छात्रों से भी मिले। उन्होंने छात्रों से पूछा आप लोगों की कक्षाऐं नियमित चल रही है? कुछ छात्रों ने कहा सर अमुक अध्यापक पिछले 15 दिनों में क्लास से नहीं आ रहे है ये बात सुनकर कुलपति ने एक लिखित नोटिस उस प्राध्यापक को भिजवाया और लिखा कि ''24 घण्टे के भीतर व्यक्तिशः मुझसे मिले। उस नोटिस मिलने के बाद भी तीन दिन बाद वो प्राध्यापक कुलपति से मिलने पहुँचे। कुलपति ने मिलते ही पहला प्रश्न किया। आपको 24 घण्टे के भीतर ही मुझसे मिलना था और आप आज तीन दिन बाद आ रहे है? प्राध्यापक ने कहा सर मुझे दस्त लग रहे थे इसलिए मैं समय पर नहीं आ सका। तत्काल कुलपति ने पूछा ये दस्त नोटिस मिलने के पहले शुरू हुई था नोटिस मिलने के बाद में।

एक अन्य घटना ने मुझे गहरे तक सोचने को मजबूर कर दिया। मैं एक विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर चार माह के लिए गया था। दूसरे प्राध्यापकों ने एक छात्र के बारे में मुझे बताया कि आमुक छात्र से आप सावधान रहे क्योंकि वो सभी शिक्षकों को क्लास में परेशान करता है। तीन–चार दिन तक वो छात्र चुपचाप क्लास में बैठा रहा और बड़े ध्यान से मुझे सुन भी रहा था। एक दिन क्लास के बाद मैंने उससे पूछा कई शिक्षकों की राय तुम्हारे बारे में अच्छी नहीं है, ऐसा क्यों है? उसने जवाब दिया 'सर मैं यहाँ डिग्री लेने नहीं आया हूँ बल्कि पढ़ने आया हूँ। जब तक मुझे थोड़ी सी भी शंका होती है, मैं टीचर को आगे नहीं बढ़ने देता हूँ। बस यही कारण है।

ये घटना करीब चार वर्ष पूर्व की है। एम.बी.ए की कक्षाओं के चालू होने का पहला दिन था। पहले दिन छात्रों और फैकल्टी के बीच

परिचय का दिन होता है। पहले दिन करीब 70 छात्र उपस्थित थे। मैंने एक छात्र से प्रश्न पूछा 'बेटा आपने इस कॉलेज में **एडमिशन** क्यों लिया है? उसने कहा सर मैंने प्रकृति मैडम को देखकर **एडमिशन** लिया है। तभी अचानक दूसरे छात्र ने भी आगे बढ कर कहा 'सर मैंने भी प्रकृति मैडम को देखकर **एडमिशन** लिया है। यह सुनकर मैंने पूरी क्लास से पूछा कि कितने छात्रों ने प्रकृति मैडम की वजह से यहाँ **एडमिशन** लिया है? मैं आष्चर्य चकित था जब करीब 60 छात्रों ने हाथ खड़े कर कहा कि हमने मैडम की वजह से **एडमिशन** लिया है। इसी बीच एक लड़के ने पूरे जोष के साथ कहा कि सर मैडम ने मुझे अपना मोबाइल नम्बर भी दिया है। मैंने उस छात्र से मजाकिये लहजे में कहा ''बैटा मैडम ने तुम्हे अपना मोबाइल नम्बर दे दिया लेकिन मुझे तो आज तक मैडम ने अपना नम्बर नहीं दिया। क्लास समाप्त होने के बाद वो छात्र मेरे पास आया और पूरी गंभीरता से कहने लगा 'सर आपको चाहिए तो मैडम का नम्बर मैं दे सकता हूँ। मुझे जोर से हंसी आई और मैंने छात्र से कहा 'बेटा मैडम के ग्यारह साल का लड़का है यह वाक्य सुनते ही छात्र का विषाद से भरा चेहरा देखने लायक था।

कभी–कभी कक्षा में एक शब्द भी अगर गलत ढंग से बोल दिया जाये या उसका सही उच्चारण न हो सके तो कई बार बड़ी हास्यास्पद स्थिति बन जाती है। यह घटना काफी पुरानी और मेरे एक कॉलेज के एक साथी प्राध्यापक के साथ घटी। उनका अंग्रेजी भाषा में हाथ काफी तंग था। एक बार कक्षा में वो Should का उच्चारण 'शुल्ड' कर गये। उस दिन से पूरे कॉलेज में उनका नाम 'शुल्ड सर' ही हो गया। इस घटना के बाद वो काफी आहत भी हो गये और कुछ समय बाद उन्होंने दूसरे विश्वविद्यालय में ज्वाइन कर लिया।

इसी भाषागत समस्या से संबंधित एक और घटना साझा कर रहा हूँ। एक बार विश्वविद्यालय में बाहर की एक टीम निरीक्षण करने आई। उस टीम में एक महिला भी थी। उसे हर कॉलेज निरीक्षण करना था। उस टीम के साथ विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर को भी नियुक्त किया गया जो कि टीम का मार्गदर्शन कर सके। उन प्रोफेसर साहब का भी अंग्रेजी में हाथ तंग था। जब वो टीम हमारे विभाग में आई और सारा कार्य निपट गया तो ही प्रोफेसर साहब कहना चाह रहे थे Should we proceed now? लेकिन के बोल गये Should we produce now?

# 8.
# वो घटनाएँ जिन्होंने छाप छोड़ी

एक तरफ जहाँ कालखण्ड के महान और कद्दावर व्यक्तियों ने मुझे वैचारिक स्तर पर बहुत कुछ दिया तो दूसरी तरफ इसी कालखण्ड में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख घटनाओं ने भी मुझे काफी प्रभावित किया और चिन्तन को नई दिशा दी।

पहली घटना थी 1990 में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण। कई राष्ट्रों की भाग्य रेखा में विभाजन की रेखा लिखी होती है ऐसा विभाजन या तो विदेशी ताकतों के षड्यंत्र का परिणाम होता है या गृह युद्ध की वजह से। ऐसा ही द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ जब जर्मनी को दो हिस्सों में बांट दिया गया। दोनों हिस्सों के बीच एक लम्बी दीवार बना दी गई जिसे बर्लिन वॉल के नाम से जाना जाने लगा। 9 नवम्बर 1989 को उस वॉल को दोनों हिस्सों के जर्मन वासियों द्वारा गिरा दिया गया और 31 अगस्त 1990 को पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी का अधिकारिक तौर पर एकीकरण हो गया। इस एकीकरण के बाद मैंने कई मंचों से यह कहा था कि इस घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि किसी देश या समाज में पूर्वजों से कोई गलती हो जाये लेकिन अगर अगली पीढ़ी समझदार आती है तो उस गलती को बहुत अच्छी तरह से दुरूस्त किया जा सकता है। यही बात 1975 में वियतनाम के एकीकरण ने भी सिद्ध की और मैं आशावादी हूँ कि यही बात कभी भारत और पाकिस्तान के संदर्भ में भी सिद्ध होगी।

दूसरी घटना वर्ष 1991 की है जब सोवियत संघ जैसा शक्तिशाली राष्ट्र और विश्व के शक्ति संतुलन का एक प्रमुख स्तंभ ताश के पत्तों के महल की तरह ढह गया और सम्पूर्ण राष्ट्र पन्द्रह अलग अलग राष्ट्रों में बंट गया। इस विघटन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शीर्ष पर सत्ता चाहे कितनी भी ताकतवर हो, जनता की आवाज को लम्बे समय तक दबा कर नहीं रखा जा सकता।

तीसरी घटना वर्ष 1994 की है जब नैल्सन मण्डेला ने दक्षिणी अफ्रीका के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति केरूप में शपथ ली और इसके साथ ही दुनिया से औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का हमेशाा के लिए समापन हो गया। व्यक्तिगत रूप से मैं मण्डेला का फैन रहा हूँ जिसने अपने जीवन के 37 वर्ष जेल में बिताये लेकिन अपने भीतर की आजादी की आग को कम नहीं पड़ने दिया और देश को आजादी दिलवा कर ही दम लिया। यही वजह थी कि मण्डेला के राष्ट्रपति पद के शपथ गृहण समारोह में 140 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष मौजूद थे जो अपने आप में एक वर्ल्ड रिकॉर्ड है।

राष्ट्रीय मंच पर 1991 के आर्थिक एवं वित्तीय संकट से देश को निकालने में तत्कालीन वित्त मंत्री केरूप में श्री मनमोहन सिंह की प्रभावशाली भूमिका और 1996 के बाद 14 राजनैतिक दलों को एक साथ लेकर कुशलता के साथ सरकार चलाने में श्री अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका ने गहरे तक मेरे ज़हन में एक बात बिठा दी थी सरकारे आती जाती रहेगी लेकिन इस देश में कुल मिलाकर संसदीय लोकतंत्र का भविष्य उज्ज्वल है।

एक व्यक्ति को आगे बढ़ने में तीन चीजे बहुत मदद करती है पहला वो घटनाऐं जो आपको कभी कभी भीतर तक झकझोर जाती है और आपके जीवन में एक नया मोड़ ले आती है। दूसरे वो व्यक्ति या महापुरूष जिनसे आप मिलते हैं या उन्हें सुनते है या उन्हें पढ़ते है तीसरा आपका भ्रमण। जब आप नये नये देश, नई जगह पर घूमते हैं और आपकी दृष्टि में व्यापकता आती है। मेरे जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं और व्यक्तियों के बारे में पहले चर्चा कर चुका हूँ। मैंने देश विदेश में भ्रमण काफी किया, हर देश और हर भ्रमण कार्यक्रम ने मुझमें नई उर्जा का संचार किया। श्रीलंका के कार्यकाल के बारे में भी पहले चर्चा कर चुका हूँ, कुछ अन्य देशों में भी प्रवास के दौरान मुझे काफी सीखने को मिला।

वर्ष 2001 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार जो मालदीव में आयोजित की गई उसमें भी मेरा जाना हुआ। उस तीन दिन की सेमिनार में भारत से कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों का जाना हुआ उनमें प्रमुखतः उस समय विदेश राज्यमंत्री श्री सलमान खुर्शीद, एम.डी.आई. गुड़गांव के निदेशक श्री प्रीतम सिंह, आईआईएम लखनउ के निदेशक श्री देवीसिंह,

प्रेस्टीज इंस्टीट्युट के निदेशक श्री उपेन्द्र धर, प्रो. मोहन अग्रवाल आदि प्रमुख थे। मालदीव की यात्रा मैंने छाया के साथ ही की। उदयपुर से त्रिवेन्द्रम पहुंचकर तीन दिन कुमारकोम तथा कोवलम के समुद्री किनारों पर गुजार कर फिर त्रिवेन्द्रम से सीधी माले (मालदीव की राजधानी) की फ्लाइट मिली। हवाई जहाज से जो मालदीव की खूबसूरती नजर आती है उसका वर्णन शब्दों के माध्यम से नहीं किया जा सकता। मालदीव छोटे छोटे 2000 द्वीपों का एक समूह है उसमें से कुछ द्वीप तो बिल्कुल वीरान है। मालदीव दुनिया का समुद्र तल से सबसे नीचे बसा देश है। यहाँ की समुद्र तल से ऊँचाई सिर्फ 1 मीटर है। कई द्वीपों पर तो ये ऊँचाई और भी कम है। कई पर्यावरण विशेषज्ञों ने भविष्यवाणी कर दी है कि आगामी 50 वर्षों में यह देश पूरा समुद्र में समा जायेगा। एक द्वीप पर सिर्फ हवाई अड्डा है। यहाँ फ्लाइट उतारने के लिए बड़े कुशल पाइलट लगाये जाते हैं क्योंकि रनवे के चारों तरफ समुद्र है। रनवे से समुद्र की दूरी मात्र 50 मीटर है। मालदीव की राजधानी माले दूसरे द्वीप पर स्थित है। हवाई अड्डे से माले तक जाने के लिए आपको समुद्र से बोट में ही जाना पड़ेगा। मालदीव युनिवर्सिटी एक अलग द्वीप पर स्थित है। जिस तरह भारत के किसी शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए ऑटो चलते हैं, मालदीव में एक से दूसरे द्वीप में जाने के लिए बोट चलती है। जितनी भी बोट्स चलती है वो सारी ए.सी. बोट्स होती है और काफी आरामदायक होती है। झिलमिलाती चांदनी रात में समुद्री किनारे पर मिट्टी में शानदार बैठने की व्यवस्था और वहीं पर कॉकटेल डिनर और सामने राजधानी माले के शाही महल बहुत सुन्दर नजारा प्रस्तुत कर रहे थे। इस कॉन्फ्रेंस की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि हर तकनीकी सत्र अलग द्वीप में आयोजित किया गया था और हर द्वीप पर खूबसूरत होटलें और बेहतरीन नजारा था। मुझे मालदीव की एक घटना बहुत याद आती है। हम करीब 80 प्रतिनिधि उस कॉन्फ्रेंस में भाग ले रहे थे जो दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों से आये हुए थे उनमें पाकिस्तान बांग्लादेश, नेपाल, भूटान आदि प्रमुख थे। रात को डिनर का कार्यक्रम चल रहा था। मैं घूमते घूमते एक प्रोफेसर साहब के पास जाकर बैठ गया। परिचय किया तो पता लगा कि वो प्रोफेसर देवीसिंह है जो उस समय आईआईएम लखनऊ के निदेशक थे। बातचीत के दौरान उन्होंने मुझसे पूछा ''क्या कल आप भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पर अपना शोध

पत्र पढेंगे?'' मैं हैरान था कि उन्हें मेरे शोध पत्र का शीर्षक कैसे पता है? और मैंने यह प्रश्न उनसे पूछ भी लिया। उन्होंने तत्काल कहा ''आपके शोधपत्र का रिव्यू मैंने ही किया था और मैंने ही पोजिटिव रिपोर्ट भेजी थी।'' उस दिन मैंने फिर सोचा वास्तव में दुनिया कितनी छोटी है। मैं जब भी देश या विदेश में इस तरह की किसी भी कान्फ्रेंस में जाता था, बड़ी गंभीरता से सारे तकनीकों सत्रों में बैठा करता था और अच्छे शोध पत्रों को सुनकर हमेशा कुछ नये विचार मस्तिष्क में आ जाते थे। एक अन्य बात जो मैं यहाँ जोर देकर कहना चाहूंगा कि अच्छे शोधार्थी और शोधकर्ता विशेषरूप से समाज विज्ञान में सिर्फ बड़े और समृद्ध देशों की ही बपौती नहीं है। कई छोटे देश जैसे बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका में भी अच्छे शोधकर्ता हैं और काफी अच्छी रिसर्च कर रहे है क्याकि इन देशों के कई विश्वविद्यालयों में कई अच्छे शोधकर्ताओं से मेरा व्यक्तिगत संपर्क भी रहा है।

वर्ष 2004 में दक्षिण एषिया मैनेजमेन्ट फोरम की कॉन्फ्रेंस लाहौर में हुई जिसमें मेरा भी जाना हुआ, साथ में छाया भी थी। भारत से हम करीब 40 प्रोफेसरों का दल जा रहा था इसीलिए वीजा भी आसानी से मिल गया। हम आठ लोगों ने सोचा कि बाघा बॉर्डर को पैदल पर लाहौर जाना ठीक रहेगा। अतः हम लोग, जिस दिन कर कॉन्फ्रेंस का उद्घाटन होना था उसी दिन प्रातः 8 बजे बाघा बॉर्डर पहुंच गये। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि बाघा बॉर्डर को पैदल पार कर पाकिस्तान प्रवेश करने की अनुमति केवल 65 वर्ष से उपर के व्यक्ति को ही है बाकी सभी लोगों को दिल्ली से ही फ्लाइट में ही आना था। हमारी सभी की उम्र 65 वर्ष से नीचे की थी। यह सुबह 8 बजे की बात है और दिन के 12 बजे लाहौर में कॉन्फ्रेंस का उद्घाटन होना था। समय सिर्फ 4 घण्टे क्या किया जाये? बाघा बॉर्डर पर बीएसएफ का नियंत्रण रहता है। मैंने कुछ परिचय निकाला तो उन्होंने कहा कि बीएसफ के आईजी साहब से फोन करवा दे तो हम आपके लिए बॉर्डर खोल सकते हैं। आईजी साहब से बात की तो उन्होंने कहा कि सिर्फ डीजी साहब अनुमति दे सकते है। डीजी साहब ने केन्द्रीय गृह सचिव के नंबर दिए, गृह सचिव ने विदेश सचिव श्री अरूण सिंह के नम्बर देकर उनसे संपर्क करने को कहा। संयोगवश श्री अरूण सिंह से बात हो गई और उन्होंने तत्काल बाघा बॉर्डर अधिकारियों को निर्देष दिये कि इन आठ

प्रोफेसर को बाघा बॉर्डर पार करने दिया जाये, तब कहीं जाकर हम बॉर्डर पार कर सकें और कान्फ्रेंस में उद्घाटन समय पर पहुँच सके।

करीब एक सप्ताह का लाहौर प्रवास आज भी मेरे मस्तिष्क में तरोताजा है। वहाँ के आम आदमी की मेहमानवाजी, दुकानदारों की आत्मीयता तथा लाहौर युनिवर्सिटी ऑफ मैनेजमेंट, युनिवर्सिटी ऑफ पंजाब तथा पाकिस्तान एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन के स्टॉफ तक फैकल्टी था व्यवहार ऐसा था जिसने हम सभी भारतीयों का दिल जीत लिया। उस समय पूरे पाकिस्तान में भी श्री अटल बिहारी वाजपेयी हीरो बने हुए थे क्योंकि संसद में अविश्वास प्रस्ताव के दौरान श्री वाजपेयी जी की सरकार एक मत से गिर गई थी और वाजपेयी जी ने इस्तीफ दे दिया था। इस घटना के बाद पूरे पाकिस्तान में वाजपेयी जी को काफी सम्मान से देखा जाने लगा। मैं पाकिस्तान में जहाँ भी गया लोगों ने इसी घटना के बारे में विस्तार से चर्चा की। लाहौर को भी शाहजहाँ के समय ही बसाया गया था और उसकी बसावट भी कुछ पुरानी दिल्ली की तर्ज पर ही है। बादशाही मस्जिद, सामने लाल किला और पास मे ही गुरूद्वारा तथा सड़क के दूसरी और मीनार–ए–पाकिस्तान पूरी तरह से दिल्ली के चांदनी चौक, जामा मस्जिद और लाल किले की याद ताजा करते है। शाहजहाँ ने कश्मीर से बर्मा तक अपने राज्य का विस्तार किया और हर जगह एक जैसी स्थापत्य कला व भवन निर्माण कला के दर्शन हो जाते हैं।

वर्ष 2004 में पाकिस्तान भ्रमण के बाद एक महत्वपूर्ण निर्णय लेना था और वो था बड़ी बेटी प्रज्ञा जिसने स्कूली शिक्षा सेन्ट मेरीज उदयपुर से पूरी कर ली थी उसे कॉलेज में कहाँ दाखिला करवाना है तथा क्या विषय दिलवाना है? उसने कक्षा दस व ग्यारह में भी आर्ट्स विषय ही चुना था। कॉलेज में भी उसको आर्ट्स विषय ही रखना था, ऐसे में जयपुर में उसने इन्टरनेशनल कॉलेज ऑफ गर्ल्स में फाईन आर्ट्स में दाखिला लिया और उसे हॉस्टल भी मिल गया था। एक बार जब बच्चे पढ़ने के लिए बाहर चले जाते हैं तो वो फिर हमेशा के लिये विदा हो ही जाते हैं। क्योंकि पढ़ाई पूरी होते ही नौकरी और फिर शादी। फिर बच्चों का साथ माँ–बाप से छूट ही जाता है। जब तक बच्चे आपके पास है आप खुशनसीब है और उस समय को बहुमूल्य ईश्वरी प्रसाद समझ कर ग्रहण करना चाहिए।

यह एक ऐसा समय था जब मैंने मोटिवेशनल स्पीकर तथा कारपोरेट ट्रेनर केरूप में मेरी पहचान बनाई। इस दौरान कई बड़े औद्योगिक घरानों तथा संस्थानों के कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में मेरा निरंतर आना जाना रहा। उनमें प्रमुखतः भारतीय तेल व प्राकृतिक गैस आयोग, दूरदर्शन, भारतीय जीवन बीमा निगम, आन्तरिक सुरक्षा अकादमी, माउन्ट आबू प्रमुख है। आन्तरिक सुरक्षा अकादमी, माउन्ट आबू से मैं वर्ष 1992 से 2024 तक सक्रियरूप से जुड़ा रहा। इस अकादमी में अर्द्ध सुरक्षा बलों के आधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते रहते है। करीब करीब प्रत्येक माह में एक बार मेरा माउन्ट आबू जाना होता रहा। इस अकादमी ने मुझे भी बहुत कुछ सिखाया। सुरक्षाबलों के अधिकारियों की निष्ठा, अनुशासन, फिजिकल फिटनेस और देश के प्रति जज्बे ने मेरी सोच को नई दिशा और दशा दी। आज भी जब मै आंख बंद कर सोचता हूँ तो मेरी कक्षा में वर्दी में बैठे 50–60 चुस्त अधिकारी मुझे दिखाई देते है। आज के शैक्षिक जगत की एक समस्या है कि विश्वविद्यालय शिक्षक केवल क्लास टीचर बन कर रह गये है और बाहर की दुनिया से पूरी तरह कट गये है या बाहरी दुनिया ने उनकी क्षमता को स्वीकार ही नहीं किया। मेरा ये सोचना है कि कुछ वर्षों के टीचिंग अनुभव को अपने बायोडेटा में शामिल करके आप प्रोफेसर या कुलपति पद तक तो पहुंच सकते हैं परंतु समाज या व्यवस्था आपकी उपस्थिति को गंभीरता से कभी नहीं लेगी। मुझे अकबर इलाहाबादी का एक शेर इस संदर्भ में याद आता है –

*क्या करें आहबाब, क्या करे नुमाया कर गये*
*बीए करी, एम ए करी, पेन्शन ली और मर गये।*

वर्ष 2005 में मेरे मित्र प्रो. अनूप सिंह निरमा इंस्टीट्युट ऑफ मैंनेजमेंट के निदेशक बन गये, बाद में वर्ष 2013 में श्री सिंह पूरे निरमा विश्वविद्यालय के डायरेक्टर जनरल बन गये। यह पद कुलपति पद के समकक्ष होता है। उन्होंने मुझे वर्ष 2005 में निरमा इंस्टीट्युट में विजिटिंग फैकल्टी बतौर आमंत्रित किया। मैंने एक सेमेस्टर वहाँ एक पेपर ब्राण्ड मेनेजमेन्ट का पढ़ाया। इसके लिए मैंने अपने विश्वविद्यालय से अनुमति ली। प्रत्येक शुक्रवार को सात बजे ट्रेन से मैं उदयपुर से प्रस्थान करता, शनिवार सुबह 4:30 बजे अहमदाबाद पहुंचता जहाँ पर निरमा विश्वविद्यालय की गाड़ी से विश्वविद्यालय पहुंचकर गेस्ट हाउस

में थोड़ा विश्राम और फिर प्रातः 9:30 से 4:30 बजे तक क्लास फिर रविवार को भी रात 8 बजे तक क्लास लेकर रात 10:30 बजे वाली ट्रेन से वापस उदयपुर प्रस्थान करना, ये रूटीन करीब 4 माह बराबर चलता रहा। यह शारीरिक रूप से थका देने वाला लेकिन मुझे मानसिकरूप से तृप्ति देने वाला कार्यक्रम था जिसने मुझे बहुत कुछ दिया और सिखाया। ऐसी कोई भी क्रिया जो आपको मानसिकरूप से संतुष्ट करती है उसमें आपको थकान या उबाउपन का एहसास नहीं होता। इसी दौरान वर्ष 2006 भी घटनाओं से भरा हुआ वर्ष ही साबित हुआ।

जैसा मैने पहले भी कहा रिसर्च गाइड व स्कॉलर के सम्बन्ध जीवन पर्यन्त के मधुर संबंध बनते हैं। इसी का उदाहरण मेरे एक रिसर्च स्कॉलर प्रो. जमील कादिर ने दिया। जमील एक फिलीस्तीनी छात्र था जिसने 1996 में मेरे निर्देषन में Ph.D पूरी की उसके बाद वो सउदी अरब के किंग फैजल युनिवर्सिटी में मैनेजमेंट के प्रोफेसर बन गये। कई वर्षों तक वो मुझसे निवेदन करते रहे कि आप मेरी युनिवर्सिटी में प्रोफेसर के पद पर दो वर्ष के लिए ज्वाइन कर ले लेकिन मैं बराबर टालता रहा। वर्ष 2006 में एक दिन उन्होंने अपने कुलपति से फोन पर मेरी बात करवाई तथा कुलपति ने जमील की उपस्थिति में किंग फैजल युनिवर्सिटी ज्वाइन करने का इतना आग्रह किया कि मैं टाल नहीं सका और उनको मैंने अपनी स्वीकृति दे दी और अगले ही दिन मेरे पास आपका ऑफर लैटर आ गया।

मैंने उस समय सउदी अरब जाने का निश्चय क्यों किया ? ये सवाल उस समय मेरे कई मित्रों, रिश्तेदारों ने मुझसे पूछा तो उसका एक ही उत्तर था और वो था पैसा। ये उस उम्र का नहीं बल्कि उस पीढ़ी का तकाजा था क्योंकि उस समय तक देश में वेतन स्तर इतना आकर्षक नहीं था जबकि दूसरी और पैट्रो डॉलर की बढ़ती चमक से सउदी अरब की करेंसी रियाल की कीमत आसमान छू रही थी। मध्यम वर्गीय परिवारों के मन में आर्थिक असुरक्षा का भाव हमेशा विद्यमान रहा है चाहे पैसा कितना ही कमा लें। संभवतः मेरे साथ भी यही रहा। इसी वजह से ज्यों ही ऑफर लैटर आया मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया और फिर अगले चरण यानि सउदी वीजा का स्टाम्प लगवाने के लिए दिल्ली जाने की तैयारी में जुट गया। दिल्ली पहुंचने के बाद मैंने नई समस्या का सामना किया। सउदी अधिकारियों ने कहा कि आपकी

जितनी भी डिग्री व सर्टिफिकेट है उनका अरबी भाषा में अनुवाद चाहिए। दिल्ली में अनुवादक को ढूंढने का प्रयास किया तो पता लगा कि पालिका बाजार में एक दूकान है जहाँ यहीं काम किया जाता है। उस दूकाने वाले ने मेरी सभी डिग्रियों का अरबी भाषा में अनुवाद अगले दिन करके दे दिया लेकिन फिर एक नई समस्या हो गई। अनुवादक ने मेरा सरनेम ''जैन'' के स्थान पर ''कैन'' लिख दिया फिर दूतावास ने मेरे दस्तावेज वापस कर दिये फिर दूसरे दिन वापस संशोधन करवा कर सउदी दूतावास में दस्तावेज जमा करवाये तब कही जाकर मुझे वीजा मिल पाया। वीजा मिलने के 15 दिन बाद मैंने सउदी के लिये प्रस्थान किया। उदयपुर से जयपुर, जयपुर से शारजहाँ तथा वहाँ से दमाम। मैं शाम के 6 बजे दमाम हवाई अड्डे पर उतरा। दमाम से मुझे सड़क मार्ग से अल अहासा जाना था जो कि 2 घण्टे का रास्ता था। जमील ने मुझे सूचित किया था कि उसका एक आदमी मुझे दमाम हवाई अड्डे पर मिल जायेगा। जब मैं दमाम हवाई अड्उे पर उतरा तो उतरने के बाद मुझे जमील से सम्पर्क करना था और मेरा मोबाइल काम नहीं कर रहा था क्योंकि सउदी अरब में वहीं की सिम ही काम करती है। मैंने सोचा किसी सउदी व्यक्ति से ही निवेदन करके उसके फोन से जमील से बात कर लूंगा लेकिन आधा घण्टे प्रयास करने के बाद भी कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो अंग्रेजी में मेरी बात समझ सकता हो। बड़ी मुश्किल से एक भारतीय जो सउदी में रहता था उसके फोन से जमील से बात हुई तो पता लगा कि जो व्यक्ति मुझे लेने आया वो गेट नं. 06 पर खड़ा है। वहाँ गेट नम्बर भी अरबी भाषा में ही लिखे थे। बड़ी मुश्किल से गेट नं. 6 पर पहुंचकर उस व्यक्ति से मुलाकात हो पाई। करीब 2 घण्टे के सफर के बाद में अल अहासा पहंचा। वहाँ एक अच्छी होटल में मेरे ठहरने की व्यवस्था युनिवर्सिटी ने कर रखी थी। दूसरे दिन मैं नाश्ता करके 10 बजे किंग फैजल युनिवर्सिटी में ज्वाइन करने पहुंच गया। लम्बा चौड़ा परिसर, शानदार इमारतें। नजर आ रहा था पैसे की चमक कितनी भारी होती है। मेरी गाड़ी जो वाइस चांसलर ने ही भेजी थी, ज्यों ही वाइस चांसलर कार्यालय पहुंची एक अधिकारी जो गेट पर मेरा इन्तजार कर रहा था वो मुझे वाइस चांसलर के कक्ष में गया। विशालकाय हॉल जिसकी दीवारों पर सउदी अरब के किंग और उसके भाईयों के फोटो लगे थे, में वाइस चांसलर जो सफेद एंडूरा (जो अरबी लोग पहनते हैं) पहने

हुए थे ने बड़ी गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया और काली चाय पिलाई। उसी समय वहाँ मेरी ज्वाइनिंग से संबंधित कागज लेकर रजिस्ट्रार आ गये। कई कागजों पर मेरे हस्ताक्षर करवाने के बाद, रजिस्ट्रार ने मेरा पासपोर्ट मांगा। मैंने यह सोचकर पासपोर्ट दे दिया कि शायद कुछ औपचारिकता पूरी करने के बाद मेरा पासपोर्ट वापस मुझे मिल जायेगा। कुछ देर बाद रजिस्ट्रार हाथ में अरबी भाषा में लिखा एक कागज लेकर आये और मुझे दे दिया। मैंने उनसे पूछा यह क्या है ? उन्होंने कहा इसे अरबी भाषामें ''अकामा'' कहते हैं। इस कागज में आपके पासपोर्ट का सारा विवरण लिखा हैं। मैंने पूछा मेरा पासपोर्ट कहा है ? उस व्यक्ति ने कहा आपका पासपोर्ट हमारे पास रहेगा और आपके पासपोर्ट की पूरी डिटेल अकामा में हैं। अगर सउदी अरब में कहीं भी जाये, इस अकामा को अपने पास रखिये। उसने कहा कि सउदी अरब में यहीं कानून है। किसी भी विदेशी को सबसे पहले यहाँ अपना पासपोर्ट जमा करना पड़ता है ताकि वह कभी बिना सूचना दिये देश छोड़कर न जा सकें। मैं सउदी अरब से पहले भी नौकरी और शोर्ट असाइनमेंट पर कई देशों की यात्रा कर चुका था पर ऐसे किसी भी कानून से मेरा सामना नहीं हुआ था। यह मेरे लिए एक कल्चरल शॉक की तरह था। आप एक दूसरे देश में है और आपका पासपोर्ट भी अपने पास नहीं है इससे ज्यादा गंभीर मानसिक असुरक्षा की बात हो नहीं सकती थी, लेकिन इसी बात को लेकर संतोष कर लिया कि इस देश में हजारों भारतीय है और सभी पर यही कानून लागू होता है तो मैं एक अपवाद नहीं हूँ। दो दिन में मैं एक किराये के मकान में शिफ्ट हो गया जो कि युनिवर्सिटी के सामने ही था। जब आप अपने देश में होते हैं तो पैसा कमाने की ललक में आप विदेश में कहीं भी जाने को तैयार हो जाते हैं और जब विदेश की धरती पर पहंचते है तो थोड़े दिनों में आपको अपना देश, गली, मुहल्ले, रिश्तेदार, तीज त्योहार सब याद आने लगते हैं और ये स्थिति और भी विषम हो जाती है जब आप भारत जैसे उदारवादी, लोकतांत्रिक और खुली व्यवस्था से 2006 वाली सउदी अरब जैसी कठोर, बन्द एवं राजशाही वाली व्यवस्था में पहुंच जाते हैं। आज सउदी अरब बहुत ज्यादा बदली हुई और उदार व्यवस्था बन चुका है लेकिन मैंने 2006 वाला सउदी अरब देखा है जिसकी कल्पना एक आम भारतीय नहीं कर सकता। किसी देश में कुछ दिनों के लिए धार्मिक अनुष्ठान (हज आदि) या व्यावसायिक यात्रा पर जाने और लम्बे समय

के लिये नौकरी पर जाने में बड़ा अन्तर होता है। जब आप एक लम्बे समय के लिए किसी देश में जाते हैं तो वहाँ की असली तस्वीर से उसी तरह से सामना होता है जैसे किसी फिल्मी नायिका को बिना मेकअप के सुबह बिस्तर से उठते ही देख लेना।

एक दिन में मेरे कमरे को व्यवस्थित करके अगले दिन से मैंने युनिवर्सिटी जाना चालू कर दिया। मुझे सउदी प्रवास के दौरान काफी नवीन अनुभव हुए। जहाँ जहाँ भी मैं घूमा, काफी अच्छी संख्या में भारतीयों को पाया। वहाँ पर दो श्रेणी के भारतीय मिले। पहली श्रेणी में वो लोग थे जो ट्रक ड्राइवर, मैकेनिक, घरेलू नौकर, नर्सिंग स्टॉफ आदि की काम कर रहे हैं। दूसरी श्रेणी में डॉक्टर, आईटी प्रोफेशनल युनिवर्सिटी प्रोफेसर इत्यादि लोग थे। सउदी प्रवास उतना सुखकर नहीं रहा जितना दूसरे देशों मे रहा उसकी प्रमुख दो वजह रही प्रथम सउदी अरब की गर्मी जहाँ पर औसत तापमान 47–50 डिग्री तक रहता है और दूसरा भाषागत समस्या। मुझे अरबी भाषा नहीं आती थी और अंग्रेजी का स्तर पूरे सउदी अरब में बहुत ही कमजोर था। इस काल से मुझे मेरी कक्षा में भी काफी कठिनाई आती थी। एक अन्य यह वजह यह भी थी कि उस दौर में सउदी अरब एक अठाहरवी शताब्दी वाले देश की तरह चल रहा था। मसलन मैंने अपने 6 माह के प्रवास से किसी महिला का चेहरा तक नहीं देखा क्योंकि उस समय पूरे देश में महिलाओं के लिए हिजाब (बुर्का) अनिवार्य था। मेरी कक्षा में भी आगे लड़के बैठते थे, फिर एक पर्दा होता था और लड़कियाँ पर्दे के पीछे बैठती थी। अगर किसी लड़की को कोई प्रश्न पूछना होता तो वो पर्दे के पीछे से बोलती थी। ना तो लड़की प्रोफेसर का मुंह देख पाती ना ही प्रोफेसर लड़की का। और तो और बैंक एटीएम मशीन पर अंक भी सारे अरबी भाषा में लिखे थे। उस समय मुझे जीवन में पहली बार अहसास हुआ कि हम भारतीय अपने देश में कैसे स्वर्ग जैसा जीवन जी रहे हैं। लेकिन उस स्थिति का दूसरा पक्ष भी है कानून व्यवस्था की कोई समस्या नहीं है। उस देश में चोरी, गुंडागर्दी, मिलावट जैसी कोई घटना नहीं होती। मैंने युनिवर्सिटी रजिस्ट्रार ने पूछा आपके देश में इनकम टैक्स रेट क्या है ? उसने पूछा ये इनकम टैक्स क्या होता है ? जब मैंने उसे समझाया तो उसने कहा यहाँ इनकम टैक्स नाम की कोई चीज नहीं है ना ही आपके देश पैसा भेजने पर कोई प्रतिबंध है। घुमक्कड़ जिंदगी आपको कई नये अनुभवों से नवाजती है और अलग

अलग देशों के अलग–अलग सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश आपकी भावनात्मक व मानसिक सहनशीलता की भी परीक्षा लेते हैं। सउदी अरब में ज्यादातर लोग चुपचाप अपने घरों मे कैद रहते हैं। ऐसी स्थिति में मुझे दिल्ली की कनॉट पैलेस, पालिका बाजार या जयपुर के जोहरी बाजार की भीड़–भाड़ की याद आती थी। रमजान का पूरा महीना और विशेषरूप से रातें सउदी अरब में बड़ी ही भव्य व रंगीन तरीके से मनाई जाती हे। पूरी रात खेलकूद, संगीत, जश्न, मनोरंजन चलता रहता है। रात मे ही लोग अपना दिनभर का रोजा खोलते हैं। दूकाने बड़ी ही सुन्दर सजाई जाती है। रमजान के महीने में मक्का, मदीना में करीब 2 करोड़ लोग विभिन्न देशों से हज यात्रा के लिए आते है। रियाद एयरपोर्ट ऐसा है जिसमें एक साथ 250 हवाई जहाज खड़े किये जा सकते हैं। मेरा सउदी अरब में युनिवर्सिटी के साथ तो दो वर्ष का अनुबंध था लेकिन 6 माह बाद मे वापस भारत लौट आया। लौटते समय मैंने दमाम से बहरीन और बहरीन से दिल्ली की फ्लाइट ली। सउदी अरब और बहरीन की सीमा मिलती है और केवल 40 मिनट की ही फ्लाइट है लेकिन 40 मिनट के बाद बहरीन आते ही पूरी दुनिया बदली बदली सी नजर आती है। पूरा खुलापन और आधुनिकता की चकाचौंध से लवरेज बहरीन किसी यूरोपीयन देश में होने का अहसास कराता है।

जब मैं दमाम से उड़ा उस दिन मैंने सुबह कुछ खाया पिया नहीं था क्योंकि रमजान के महीने में सउदी में दिन के समय बाजार, दूकाने, बैंक सभी बंद रहते हैं। बहरीन एयरपोर्ट से मुझे दिल्ली की फ्लाइट लेनी थी जो करीब 4 घण्टे बाद थी, इसलिए मैंने सोचा कुछ खा पी लिया जाये। एक कॉफी शॉप में बैठकर कुछ फ्रेंच फ्राइज तथा कुछ और चीजें लेकर भूख शान्त की। वो सारी चीजें कॉम्बो ऑफर में 6 डॉलर की थी। मैंने नाश्ता कर अपना क्रेडिट कार्ड काउन्टर पर बैठी लड़की को दे दिया। लड़की ने स्वाइप किया और मुझे मेरा कार्ड तथा साथ में बिल भी पकड़ा दिया। मैंने बिल को जेब में रख लिया और वेटिंग हॉल में बैठ गया। जब सिक्युरिटी चेक की घोषणा हुई तो जाते समय जेब से अनायास ही वो बिल निकाल कर देखने लगा तो बिल देखकर मेरे होश उड गये। बिल में 6 डॉलर की जगह 600 डॉलर लिखा था। मैं सिक्युरिटी गेट के बजाय वापस उसी कॉफी शॉप की तरफ तेज स्पीड से चलने लगा। यह देख कर दो सिक्युरिटी ऑफिसर

भी मेरे पास आ गये। मैंने उन्हें सारा मामला जब बताया तो वो दोनो भी मेरे साथ उस कॉफी शॉप पर आये। उस लड़की ने अपनी गलती स्वीकार की तथा वापस मेरे क्रेडिट कार्ड अकाउन्ट में 594 डॉलर जमा हो गये। उस दिन मुझे ये सीख मिली कि कागज का टुकड़ा कैसा भी हो उसे पूरा पढ़िये। समान्य सी दिखनेवाली घटनाओं में गलती की संभावना सबसे ज्यादा होती है।

मैंने सउदी अरब से आकर वापस सुखाड़िया युनिवर्सिटी में ज्वाइन कर लिया। वर्ष 2006 से 2008 तक का समय सामान्य ही रहा। वर्ष 2008 में प्राचीन ने अपना ग्रेजुएशन (बीबीए) बी.एन. कॉलेज से पूरा कर लिया और दिल्ली (नोएडा) में एमिटी युनिवर्सिटी में एमबीए कोर्स में उसका प्रवेश हो गया। इससे पहले प्रज्ञा ने भी दिल्ली (द्वारका) में एपीजै इंस्टीटयूट ऑफ मॉस कम्युनिकेशन में पी.जी. डिप्लोमा में प्रवेश ले लिया था। कुल मिलाकर आधा परिवार दिल्ली और आधा परिवार उदयपुर में रह गया। एमिटी युनिवर्सिटी में एमबीए कार्यक्रम के निदेशक डॉ. संजय श्रीवास्तव थे जिनकी वजह से भी प्राची को वहाँ एडमिशन दिलवाया गया। डॉ. संजय श्रीवास्तव ने हमेशा मुझे बड़े भाई का आदर और सम्मान दिया और वो संबंध आज तक ज्यों के त्यों है। प्रज्ञा को भी एपिजय इंस्टीट्युट में प्रवेश डॉ. अशोक ओगरा की वजह से दिलवाया गया जो उम्र में मुझसे काफी बड़े थे पर उनसे मेरे संबंध हमेशा मधुर रहे। डॉ. ओगरा एक प्रतिष्ठित लेखक, शिक्षाविद् तथा डिस्कवरी चेनल के एशिया हैड रहे हैं। प्रज्ञा और प्राची दोनों हॉस्टल में रहती थी, इस वजह से एक अच्छी राशि हर महीने दोनों को भेजनी पड़ती थी, लेकिन खुशी इस बात की थी कि दोनों को अच्छा कोर्स और अच्छी इंस्टीट्युट में प्रवेश मिल गया था। कहते हैं समय की गति न्यारी है। कब कौनसे क्षण में क्या संदेश आ जाये पता नहीं लगता। वर्ष 2009 में जनवरी माह में डॉ. संजय श्रीवास्तव का फोन आया कि भाईसाहब आप दो वर्ष के लिए छुट्टियाँ लेकर फरीदाबाद आ जाइये। यहाँ एक प्राइवेट युनिवर्सिटी मानव रचना युनिवर्सिटी है उसमें फैकल्टी ऑफ मैनेजमेन्ट में आप निदेशक के पद पर ज्वाइन कर लिजिए। क्योंकि पैसा अच्छा दे रहे थे और दूसरी बात प्रज्ञा व प्राची दोनों भी दिलली में पढ़ रही थी इसलिए मैंने मानव रचना युनिवर्सिटी ज्वाइन करने का मानस बना लिया। करीब पन्द्रह दिन बाद मैंने मानव रचना युनिवर्सिटी में ज्वाइन कर लिया। मैंने जब ज्वाइन किया तब मानव

रचना युनिवर्सिटी की शुरूआती अवस्था थी। शुरूआती दौर में सारे कायदे कानून बनाना, विभिन्न संकायों तथा समितियों का निर्माण करना युनिवर्सिटी की ब्रांडिंग करना जैसे कई कार्यों को मैंने पहली बार देखा और पूरे उत्साह से भाग लिया। श्री ओ.पी. भल्ला और उनका परिवार जिन्होंने युनिवर्सिटी की स्थापना की एक संभ्रात और अच्छे व्यक्ति थे। उनके दो बेटे अमित और प्रशान्त भल्ला भी बातचीत और व्यवहार में काफी परिपक्व थे। मेरा वहां दो वर्ष का कार्यकाल काफी संतोषप्रद एवं यादगार वाला रहा। कई मायनों में तो ये कार्यकाल मेरे जीवन का टर्निंग प्वाइंट रहा। उसके कई कारण रहे। पहला वहां जाकर मुझे दोनों बेटियों प्रज्ञा और प्राची जो उस समय दिल्ली में पढ़ रही थी उनके साथ अधिक समय गुजारने का अवसर मिल गया। सप्ताह में एक बार दोनों अपने हॉस्टल से मेरे पास आ जाती थी। कुछ ही महीनें के बाद वर्ष 2010 में प्राची का एमबीए कोर्स समाप्त हो गया और उसका कैम्पस प्लेसमेंट भी एस एन्ड पी नामक अमरीकन कम्पनी में गुड़गांव मे ही हो गया। पिछले 15 वर्षों से प्राची उसी कंपनी में है तथा काफी अच्छे पद पर कार्य कर रही है। आजकल भागदौड़ की कॉरपोरेट जिन्दगी में जिसमें कर्मचारी दो या तीन वर्ष बाद अपनी नौकरी बदलने को बावला हो जाता है और न ही संगठन उसे रोकने में सक्षम हो पाता है ऐसे में प्राची का इतने लम्बे समय से एक ही कंपनी में कार्य करना बड़ी बात है। उसी समय बड़ी बेटी प्रज्ञा का भी मास कम्नयुनिकेशन में पीजी प्रोग्राम पूरा हो गया और उसने भी मेरी मानव रचना युनिवर्सिटी ही पब्लिक रिलेशन विभाग में ज्वाइन कर लिया था। एक ही युनिवर्सिटी में एक ही ब्लॉक में भूतल पर मेरा ऑफिस था और पहली मंजिल पर प्रज्ञा का ऑफिस थ। फरीदाबाद का वो समय मेरे लिए अच्छी यादगार का समय रहा। पत्नी छाया भी छुट्टियों के समय वहीं आ जाती थी। प्रतिदिन सुबह करीब 9 बजे मैं, प्रज्ञा व प्राची अपने अपने लंच बॉक्स लेकर निकल जाते थे। वापस करीब 5 बजे तक तीनों वापस घर आ जाते थे। उसी दौरान मैंने बड़ी बेटी प्रज्ञा का वैवाहिक विज्ञापन दे दिया, उसी विज्ञापन को देखकर श्री संजय मेहता ने मुझसे सम्पर्क किया और उनके पुत्र श्री सुमन्त मेहता के साथ प्रज्ञा का विवाह निश्चित हो गया। प्रज्ञा का विवाह उदयपुर में ही करने का निश्चय किया और प्राची की भी नौकरी लग गई थी। जब

दोनों काम हो गये तो मैंने फरीदाबाद से वापस उदयपुर पुनः अपनी होम युनिवर्सिटी सुखाड़िया विश्वविद्यालय ज्वाइन कर लिया।

मैं कई बार जब मेरे बीते दिनों को याद करता हूं तो सोचता हूं कि भारत में असली कर्मवीर योद्धा कोई है तो वो देश के मध्यम वर्गीय परिवार है जो जिन्दगी के सारे संघर्षों को शान्त भाव से झेल रहे हैं। बच्चों को पढ़ा लिखा रहे हैं। कर्ज लेकर मकान बनवा रहे हैं, अपने छोटे छोटे सपनों को पूरा कर रहे हैं, ईमानदारी से टैक्स दे रहे हैं, सरकारी कानूनों की पालना कर रहे हैं अपने बुढ़ापे की व्यवस्था भी कर रहे हैं और इन सब के बावजूद अच्छे नागरिक की तरह हंसी खुशी के साथ अपनी जिन्दगी को जीने की तमन्ना अपने दिल में पाले हुए हैं और उसी तरह से जीने का प्रयास भी कर रहे है।

जब मैंने मानव रचना से वापस आकर पुनः सुखाड़ियाा युनिवर्सिटी ज्वाइन की तो मैं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी एवं निजी शिक्षण संस्थानों के मूल्यों एवं संस्कृति के भेद को अच्छी तरह से समझ चुका था। एक व्यक्ति किसी भी तरह की शिक्षण संस्था या व्यावसायिक संगठन में अपना समय अच्छी तरह व्यतीत कर सकता हैं यदि व दोनों ही क्षेत्रों की मूलभूत संस्कृति के अंतर को समझ कर अपना कार्य करे। सरकारी शिक्षण संस्थानों और विश्वविद्यालयों में कार्य करने की स्वायत्तता है, अधिनायकवाद का परचम वहां नहीं लटकाया जा सकता, नौकरी किसी भी क्षण चले जाने के मानसिक दबाव को एक शिक्षक को कभी नहीं झेलना पड़ता है और इन सबसे उपर एक विस्तृत खुला आसमान एक शिक्षक के सामने होता है जिसके रहते अपने पंखों को कितना भी विस्तार दे सकता है। शिक्षण में शोध में, कन्सलटिंग में, एक्सटेंशन में, ट्रेनिंग में अनगिनत संभावनाऐं होती है जो हर पल आपको आमंत्रण दे रही होती है। शिक्षक अपने आत्म सम्मान और गौरव के साथ भी समझौता न करने के अपने प्रण को निभा सकता है। यही वजह है कि देश के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से लेकर राज्यपाल, सांसद, मुख्यमंत्री, नौकरशाह, नीति निर्धारकों तक एक लम्बी चौड़ी फहरीस्त ऐसे लोगों की मिलेगी जिन्होंने अपने कैरियर की शुरूआत विश्वविद्यालय शिक्षक केरूप में की और अपने हर पद को जिम्मेदारी से निभाया है। मैं अपवादों की चर्चा नहीं करना चाहूंगा, क्योंकि आप किसी भी पद पर हो अगर आपने अपने आप को सिर्फ औसत दर्जे का

नागरिक बनाने तक ही सीमित रखने का प्रण ले लिया है तो सारी संभावनाऐं धूमिल हो जाती है। मैंने अपने शैक्षणिक जीवन को भरपूर तरीके से जीने का और आनन्द के साथ जीने का प्रयास किया और उसमें सफल भी रहा। जितने देश और विदेश के विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों में मुझे कार्य करने का अवसर मिला, जितने व्यावासायिक संगठनों के साथ मुझे सलाहकार केरूप में जुड़ने का अवसर मिला, ऐसे अवसर शायद पांच प्रतिशत विश्वविद्यालयों शिक्षकों को भी नसीब नहीं होते। जैसे मैंने उपर कहा सरकारी संस्थानों से इतर निजी क्षेत्र की शिक्षण संस्थाओं की अपनी मान्यताअें और सीमाऐं है, उन्हीं का सम्मान करते हुए आपको आगे चलना होता हैं।

निजी शिक्षण संस्थाओं में अगर हम वेतन या सुविधाओं की बात करें तो जो विभागाध्यक्ष या निदेशक के पद पर कार्यरत है उनका वेतन सरकारी संस्थाओं के मुकाबले काफी आकर्षक होता है लेकिन बाकी संकाय सदस्यों का वेतन इतना आाकर्षक नहीं होता है। निजी संस्थाओं में फैकल्टी का काम सिर्फ पढ़ाना ही नहीं बल्कि मार्केटिग का काम भी देखना है। एडमिशन का काम भी देखना है काम के घण्टे भी अधिक है, अवकाश काफी कम है। कुल मिलाकर स्थिति ऐसी होती है कि कोई भी व्यक्ति निजी शिक्षण संस्था में रिटायर होने तक के लिए नहीं जाता। हर साल दो साल में कोई न कोई अच्छा पद ढूंढ लेने का प्रयास करता रहता है।

# 9.
# अलगाव और बिछोह का काल

प्रसिद्ध अभिनेता चार्ली चैपलीन ने एक बार कहा कि फिल्मों में दो तरह के शॉट लिये जाते हैः लौंग शॉट और क्लोज षॉट। लौंग षॉट में फिल्म का षॉट दूर से लिया जाता है जबकि क्लोज षॉट में काफी पास जाकर शॉट लिया जाता है। जिन्दगी भी लौंग और क्लोज शॉट के इर्द–गिर्द घूमती रहती है। लौंग–शॉट में ऐसा महसूस होता है ये जिन्दगी बड़ी खूबसूरत और हसीन चीज है। आपके चारों तरफ खुशियों का संसार है, आपकी हर इच्छा पूरी हो रही है, आपको हर तरह का इन्द्रिय सुख उपलब्ध है, जिम में तराशा हुआ बदन जब आप शीशे में देखते है तो लगता है जिन्दगी कितनी खुषनुमा चीज है। आपके चारों तरफ चाटुकारों का हुजूम है जो आपको इस बात का विश्वास दिला रहा है कि आप दुनिया के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है, आपके व्यवसाय में आप थोड़े से सफल होते ही सोचते हैं, मुझमे वो सारे गुण मौजूद है जिससे मैं किसी भी व्यवसाय को सफलता के सोपान तक ले जा सकता हूँ। जब कभी बन संवर कर तैयार हो रहे होते है तो शीशे में देखकर आपको लगता है ईश्वर ने मुझे बला की खूबसूरती दी है और मेरे परिवार या ऑफिस में सबसे खूबसूरत व्यक्ति मैं ही हूँ। फेस बुक या इन्स्टाग्राम पर आपकी पोस्ट पर लोगों के कमेन्ट्स पढ़कर आप अपनी लोकप्रियता का आंकलन कर रहे होते हैं। एक हसीना की मुस्कुराहट देखकर आप को अपने आकर्षक होने का अहसास हो रहा है लेकिन जिन्दगी भी किसी फिल्म के लौंग शॉट की तरह पूरी नही होती उसमें क्लोज शॉट भी लेना ही होता है। क्लोज षॉट लेने पर पता लगता है कि जो खुशिया का संसार आपके चारों तरफ नजर आ रहा था अचानक उसमें डैन्ट या छेद हो जाता है, शरीर अचानक जवाब देने लगता है, जिम के तराषे शरीर में अब झुर्रियां नजर आने लगती है, वो चाटुकार जो आपके चरण चुम्बन करते रहते थे उनको कोई और चरण मिल गये है, जो चेहरा आपको खूबसूरत लगता था

वही चेहरा अब डराने लगा है। इसी स्थिति को देखकर गुलजार ने लिखा था:

''आने वाला पल जाने वाला है''।

2010 के मार्च माह में मानव रचना युनिवर्सिटी से अपना कार्यकाल पूरा करके रिलिव होकर वापस मैने अपनी पैरेन्ट युनिवर्सिटी, सुखाड़िया युनिवर्सिटी में प्रोफेसर के पद पर ज्वाइन कर लिया। 2010 से 2020 तक का समय मेरे जीवन का सबसे चुनौती भरा दशक रहा। बहुत कुछ किया, बहुत कुछ सहा, बहुत कुछ खोया, लेकिन ईश्वर की कृपा से सभी तरह के झांझावत के बीच जमकर खड़े रहने की हिम्मत जुटा ली। जैसा कि मैंने उपर कहा मेरा समय से पूर्व उदयपुर लौटने का एक मात्र कारण प्रज्ञा का विवाह उदयपुर से करने का विचार था। दूसरी वजह मेरे बार–बार के विदेश और बाहर की नौकरियों के दौरान छाया का प्रवास उदयपुर ही रहा और मैंने सोचा कि अब प्रज्ञा की शादी के बाद बाहर का कोई भी कार्य स्वीकार नहीं करना है और उदयपुर ही रहना है। छाया स्वयं भी बी. एन.कॉलेज में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थी और वो अकेली घर और बाहर की जिम्मेदारियों को सम्हालते–सम्हालते परेशान हो चुकी थी, साथ ही प्रतीक भी दसवी कक्षा में आ चुका था अतः उसके कैरियर के बारे में भी निर्णय करने थे। सुखाड़िया युनिवर्सिटी में मुझे युनिवर्सिटी का बहुत बड़ा मकान मिला हुआ था लेकिन मेरा रिटायरमैन्ट 2017 में होना था इसलिये मुझे रिटायरमैन्ट के बाद रहने के लिए एक मकान की भी प्लानिंग करनी थी। मेरे एक मित्र श्री अनिल शाह जो पेशे से चार्टड अकाउन्टैन्ट हैं, उन्होंने एक आवासीय कॉलौनी विकसित की थी उसमे मुझे आग्रह कर एक सुन्दर सा दो मंजिला मकान दे दिया जिसकी वजह से मेरी भविष्य की एक चिन्ता समाप्त हो गई। मैं आज तक उसी मकान में रह रहा हूँ। मेरी मित्र मंडली बहुत छोटी सी है लेकिन जीवन के हर संघर्ष और मुश्किल के दौर में बडी मजबूती के साथ उन लोगों ने मुझे भावनात्मक एवं यथार्थरूप में सम्बल दिया। महान लेखक स्टीफन कॉवे का यह कथन बिल्कुल सही है कि आपकी मित्र मण्डली एक virtous circle होनी चाहिऐ ना कि एक vicious circle की तरह। 4 जुलाई 2010 को प्रज्ञा का विवाह निश्चित हुआ। चूंकि मेरे दामाद या प्रज्ञा के होने वाले पति श्री सुमन्त अमरीका में ही नौकरी कर रहे थे अतः

विवाह से ज्यादा सोच हमारा इस बात पर था कि प्रज्ञा को यू.एस. का वीजा विवाह के पहले मिल जाये इसलिऐ विवाह की निश्चित तिथी से पहले एक आर्य समाज मंदिर में छोटा विवाह भी करवाया गया ताकि छोटे विवाह का प्रमाण देकर शीघ्र ही बड़े विवाह से पहले वीजा आ जाए क्योंकि हम सभी लोगों की इच्छा थी कि विवाह के तुरन्त बाद प्रज्ञा सुमन्त के साथ यू. एस. निकल जाऐ। यह कदम सही साबित हुआ और वीजा की समस्या हल हो गई। 4 जुलाई को विवाह के बाद प्रज्ञा दुबई रवाना हो गई क्योंकि प्रज्ञा का ससुराल दुबई ही है। उसके ससुर सा. का दुबई में एक्सपोर्ट हाउस है। दुबई में ही होटल एटलांटिस में प्रज्ञा का भव्य आशीर्वाद समारोह आयोजित किया गया। हम लोग भी सपरिवार उस आशीर्वाद समारोह में सम्मिलित हुए थे। दुबई से प्रज्ञा फिर सीधे सिएटल (यू.एस.) निकल गई।

प्रज्ञा के विवाह के करीब एक वर्ष बाद 9 अगस्त 2011 को पिताजी का देहान्त हो गया। पिताजी व माताजी दोनों मेरी छोटी बहन कल्पना के साथ जयपुर रह रहे थे। किसी भी व्यक्ति की सफलता एकाकी सफलता नहीं होती। उसकी सफलता में परिवार के सदस्यों, गुरुजनों, संबंधियों और एक वृहत समाज का योगदान रहता है। मेरी आज तक की सफलता यात्रा में पिताजी का बहुत बड़ा योगदान रहा और वह था उन्होंने मेरी संवाद शैली को निखारने में बहुत योगदान दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि आठवी कक्षा से ही मैं स्कूल का डिबेटर बन गया और मेरा रंगमंच का भय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। मेरे और पिताजी के कई मुद्दों पर मतभेद रहते थे लेकिन उन सब बातों से मेरी जिन्दगीं में उनका योगदान कम नहीं हो जाता। जब भी किसी व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाए तो सारे पूर्वाग्रहों से युक्त होकर सम्पूर्ण मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यही एक सफल व्यक्ति की पहचान होती है।

वर्ष 2011 में प्रतीक ने बी.टैक. कोर्स में गीताजली कॉलेज, उदयपुर में ही प्रवेश ले लिया। यह एक ऐसा समय था जब प्रज्ञा विवाह के बाद अमरीका जा चुकी थी, प्राची गुडगांव में नौकरी कर रही थी। प्रतीक, मैं तथा छाया उदयपुर में रह गये थे, हमारे साथ एक और साथी था और वो था हमारा प्यारा डॉगी जिसका नाम था शैबी। वो पामेरियन नस्ल का कुत्ता था, सफेद रंग और चेहरा बडा सुन्दर था, वर्ष 2005 से वो

हमारे साथ था। शैबी पूरी तरह से हमारे परिवार के सदस्य केरूप में रहा।

हर इशारे को और चेहरे के भाव को पढ़ने का अच्छा हुनर था षैबी मे। मैं कई बार सोचता हूँ कि इन्सान मिट्टी का पुतला नहीं, इमोशन्स या भावनाओं का पुतला है। कब आपके इमोशन्स किस तरफ चले जाऐं, किस इन्सान के साथ या किस बेजुबान के साथ आपकी भावनाओं के तार जुड़ जाऐं, कभी पता नहीं चलता। ऐसे में या तो व्यक्ति बिल्कुल बेबस हो जाता है या जमाने भर से लड़ने की ताकत उसमें आ जाती है। मुन्नवर राणा का वो शेर इसी संदर्भ में मुझे बार–बार याद आता है।

भुला पाना बहुत मुश्किल है, सब कुछ याद रहता है
मौहब्बत करने वाला इसलिए बरबाद रहता है।

वर्ष 2010 और उसके बाद के समय में सुखाड़िया विश्वविद्यालय पुनः आने के बाद वापस मै नियमित शिक्षण के साथ–साथ, इन्डस्ट्री लैक्चर्स, कन्सलटिंग और ट्रैनिग कार्यक्रम में पूरी तरह से व्यस्त हो गया। विश्वविद्यालय की अलग–अलग समितियों की बैठकों में कई बार यह प्रश्न अन्य लोगों द्वारा उठाया गया कि ''पी.के.जैन का योगदान युनिवर्सिटी में बहुत कम और बाहर की दुनिया में बहुत ज्यादा है'' हर बार मेरा एक ही तर्क होता था कि बाहर की दुनिया में भी मैं सुखाड़िया विश्वविद्यालय का ही झण्डा ऊंचा कर रहा हूँ। वर्ष 2014 में छोटी बेटी प्राची का विवाह हो गया। उसी वर्ष हम लोग भी युनिवर्सिटी का मकान छोड़कर अपने नये मकान में प्रवेश कर गये। प्रतीक अपनी MBA की 2016 की प्रवेश परीक्षा की कोचिंग में जुटा था। मैं अब 2017 का इन्तजार करने लगा था जो कि मेरा विश्वविद्यालय सेवाओं से सेवा निवृति का वर्ष था। वर्ष 2015 के प्रारम्भ में मैंने उदयपुर में ही डबोक स्थित गीतांजली इन्स्टीटयूट ऑफ मैनेज्मेंट में सलाहकार के पद पर अवैतनिक सेवाऐं देने हेतु जुड़ गया। हमारे नये मकान में प्रवेश के बाद छाया का बी.एन. कालेज थोडा दूर पडने लगा था और भीड़भाड़ वाली सड़कों पर वो थोडी असहजता भी महसूस करने लगी थी। हम लोग एम.बी.ए तथा अन्य पाठ्यक्रमों में दीर्घकालीन और अल्पकालीन नियोजन जैसे बिन्दु पढाते हैं जिसमें कि

दस या बीस वर्षों की अग्रिम प्लानिंग की जाती है, जब कि वास्तविकता यह है कि मनुष्य का अथवा मनुष्य की बनाई गई चीजों का अगले पल का भी भरोसा नहीं होता। अगला पल आपके लिए क्या सन्देश लेकर आ रहा है इस पल में आपको भनक तक नहीं लगेगी। मनुष्य की सारी होशियारी, चालाकी और सपनों के महल इस कदर धराशायी और मटियामेट होते है कि वो अवाक और बदहवास होकर सिर्फ एक मूक दर्शक मात्र बन जाता हैं। वसीम बरैलवी साहब का शेर इस तरह के हालात को बयां करने के लिए काफी है –

आंखों को मूंद लेने से खतरा न जायेगा
वो देखना पड़ेगा जो देखा न जायेगा

जैसा मैंने उपर कहा 2010 से 2020 वाला दशक मेरे जीवन का सबसे बड़ा चुनौतीपूर्ण दशक रहा। मेरे जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना भी इसी दशक में घटित हुई, जिसने मुझे बुरी तरह झकझोर कर रख दिया। 15 सितम्बर 2015 का प्रातःकाल करीब 8.45 बजे का समय था और नियत कार्यक्रम के अनुसार छाया अपनी कार लेकर बी.एन. कॉलेज के लिये निकल पड़ी। इससे पूर्व प्रतीक भी अपनी स्कूटी लेकर प्रातः 7.30 बजे कोचिंग के लिए निकल पड़ा था। प्रतीक अपनी कोचिंग पूरी करके वापस घर पर आ रहा था। यकायक घर के पास ही हाइवे पर उसने भारी भीड देखी तो उसे पता चला कि किसी महिला का दूसरी गाडी के साथ एक्सीडेंट हो गया। प्रतीक अपनी स्कूटी खडी करके भीड़ के भीतर उस महिला की किसी तरह की सहायता करने के उद्देश्य से घुसा, लेकिन वहां का दृश्य देखकर उसके पैरों तले जमीन खिसक गई। जो महिला दुर्घटना के बाद तड़प रही थी वो और कोई नहीं उसकी मम्मी ही थी। उसने मुझे फोन किया और मैं तुरन्त 5 मिनट में घटना स्थल पर पहुंच गया। मेरे पहुंचने के साथ साथ ही एम्बुलैस भी पहुंच चुकी थी। जब हम लोग छाया की बॉडी को एम्बुलैस में रख रहे थे उसी क्षण मुझे उसके बचने की संभावना क्षीण सी नजर आने लगी थी। प्रतीक ने रोते हुए अपनी बड़ी बहन प्राची को गुडगांव फोन मिलाया और तत्काल उसे उदयपुर आने के लिए कहा। मैंने एम्बुलैंस से ही मेरे मित्र एवं गीतांजली अस्पताल के मालिक श्री जे.पी. अग्रवाल को फोन किया। वो उस समय इटली में थे लेकिन एक कॉल पर मेरा फोन उठा लिया था, उन्होंने गीताजंली

अस्पताल में आवश्यक निर्देश दे दिये थे। जब एम्बुलैंस अस्पताल पहुंची तो संबंधित स्टॉफ मुस्तैद खड़ा था। चोटें गहरी थी। दो दिन बाद ही छाया को वैन्टीलेटर पर ले लिया गया। डाक्टर भौमिक ने तीन दिन बाद ही मुझे स्पष्ट कह दिया कि बचने की संभावनाऐं बहुत कम हैं। पांच दिन बाद अमरीका से प्रज्ञा तथा उसका परिवार आ गया। प्राची पहले ही आ गई थी। प्रतीक बच्चों में सबसे छोटा था और मम्मी से काफी नजदीक था, उसकी स्थिति बहुत खराब थी। हॉस्पीटल में अकेला मम्मी का चेहरा देखकर रोता रहता था। उसे सम्भालना मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। दिन में रोते हुए प्रतीक को सम्भालना और रात में मैं अकेला जब छाया के पास रहता तो मैं स्वयं अपने आपको सम्भालता क्योंकि जब आप अपने सामने एक नाव को दरिया में डूबते हुए देखते हैं तो अपने आप को बड़ा असहाय व असुरक्षित महसूस करते है। सारी रात मैं बेहोश छाया के चेहरे को देखता और भविष्य की आशंकाओं से अपने आप को घिरा पाता। ''गीताजंली अस्पताल के सारे स्टाफ तथा डाक्टर्स का भरपूर सहयोग मुझे उस अवसर पर मिला जिसे मैं आज तक नहीं भूल पाया। बम्बई, इन्दौर तथा दिल्ली के डाक्टर्स से भी सम्पर्क किया गया लेकिन सभी ने गीतांजली अस्पताल के इलाज को सही बताया और एयरलिफ्ट करने के लिए मना कर दिया। करीब 15 दिन बाद छाया को घर पर ही शिफ्ट कर दिया गया और 24 घण्टे की नर्सिंग व्यवस्था कर दी गई। इसी बीच प्राची एक बार वापस गुड़गांव चली गई। पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं उस स्थिति की जिसमें एक बेहोश घायल व्यक्ति पलंग पर पड़ा है, न बोल पाता है न ही कुछ समझा पा रहा है: ऐसे में उसे सम्भालने वाला व्यक्ति किस स्थिति से गुजरता होगा। ये क्रम घर पर करीब 15 दिन तक चलता रहा। और फिर आई वो 16 सितम्बर की रात। रात के करीब 10 बजे प्रज्ञा व प्रतीक भोजन करके उपर सोने चले गये। मैं छाया के पास आकर बैठ गया। रात की नर्स भी अपनी डयूटी पर आ गई थी। पलंग पर बैठे–बैठे रात के करीब 3.30 बज गये। अचानक मैने देखा कि छाया की सांस तेज चलने लग गई है और धीरे–धीरे और तेज होती जा रही है। मन आषंकाओं से घिरने लगता है। ऊंघती हुए नर्स को झकझोर कर उठाता हूँ लेकिन वो कुछ समझ नहीं पा रही है। मैं छाया के चेहरे के भावों को पढने की कोशिश करता हूँ।

विवाहित जीवन के 35 वर्षों में मैने छाया के चेहरे को इस तरह एकटक कभी नहीं देखा। कभी–कभी वो हंसी मजाक में कह देती थी कि ''जैन सा मुझे तो डाइबिटिज और थाइराइड हो गया है, लेकिन आप पूर्ण स्वस्थ हो, मुझे कुछ हो जाए तो अपनी बाकी जिन्दगी अच्छी तरह से जीना और मेरे तनु (प्रतीक) का पूरा ख्याल रखना क्योंकि प्रज्ञा और प्राची तो ससुराल चली जायेगी आपके पास सिर्फ तनु ही रहेगा'' मैं उस क्षण में सोच रहा था कि जो बात वो हसी मजाक में कहती थी, उसी बात को शायद वो अब पूरी गंभीरता से कहना चाह रही थी। मैंने छाया की हथेलियों को थामा और वो भी संभवतः इसी पल का इन्तजार कर रही थी। करीब एक मिनट के बाद ही मैंने देखा कि छाया की तेज चलती सांस अचानकरूक गई है। धड़कन और सांस बन्द हो चुकी थी। विवाहित जीवन के पैंतीस वर्ष का सफर थम गया और एक झटके में छाया, छाया से बदलकर मात्र एक मृत शरीर बन चुकी थी। मम्मी का प्यारा तनु, प्यारी प्रज्ञा और प्राची और जैन साहब सभी यहीं पर थे लेकिन अब छाया नहीं थी। उसी क्षण में देखता हूँ कि रात के 3.45 बजे शैबी अचानक छाया के कमरे में पलंग के पास आकर खडा हो जाता है। शायद बेजुबानों में भी भावनात्मक और संवेदात्मक स्तर इन्सानों जितना ही होता है। मैं चुपचाप सीढ़ियां चढकर उपर जाता हूँ और प्रज्ञा को जगाता हूँ। मै उसे नीचे चलने को कहता हूँ। मेरे चेहरे के भाव देखकर शायद वो परिणाम के बारे में समझ चुकी है। प्रतीक भी नीचे आ जाता है। मेरे पड़ोसी और पुराने मित्र श्री अनिल सिंघवी पत्नि सहित आ जाते है। उसी समय एम्बुलेंस बुलाकर छाया को निकटतम जीबीएच अस्पताल ले जाते है। करीब आधा घण्टे बाद डाक्टर भी छाया को मृत घोषित कर देते है।

सुबह से ही लोग जुटने लग जाते है। करीब 10 बजे दिल्ली वाली फ्लाइट से प्राची भी पहुंच जाती है। अन्तिम यात्रा भी सारी तैयारियां पूरी हो चुकी है। तभी फिर शैबी की भौंकने की आवाज आती हे, उसे चेन से बांध कर एक बार छाया के शव के पास लाया जाता है। वो शव के चारों तरफ घूमता है, उसकी आखों में पानी साफ नजर आ रहा है। फिर वो चुपचाप कोने में बैठ जाता है। हिन्दु विधि विधान में पांच संस्कार बताये गये हें उनमें से एक अन्तिम संस्कार है जिसमे मनुष्य अपनी देह को त्याग देता है।

गैस चलित शवदार गृह में छाया की देह समर्पित की जाती है। करीब पांच मिनट बाद चिमनी से उपर धुंआ निकलता दिखाई देता है।

धुंऐ को देखकर प्रतीक मेरा हाथ दबाकर कहता है ''देखो पापा, मम्मी ऊपर जा रही है'' मैने धीरे कहा'' जहां से आई थी वहीं वापस जा रही तुम्हारी मम्मी''

पांच सात दिन बाद सभी लोगों का वापस जाना चालू हो गया। प्रज्ञा वापस दुबई और दुबई से फिर यू.एस. जाने के लिए प्रस्थान कर रही थी। वो अपने साथ कुछ दिन प्रतीक को दुबई ले गई ताकि उसका माहौल थोड़ा बदल जाए। सबसे बाद में प्राची भी विदा हो गई इन सबके बीच मैने मानसिकरूप से अपने आप को अकेले रहने के लिए तैयार कर लिया था। परिस्थितियां कैसी भी हों या कितनी ही विपरीत हो, आपकी मानसिक तैयारी सबसे महत्वपूर्ण होती है। और वो ही आपकी जीत की पट्टकथा लिखती है।

छाया के देहावसान के पूर्व की दो घटनाऐं मुझे आज भी बार–बार याद आती है। पहली घटना वर्ष 2009 की है। मैं छाया के साथ हरिद्वार एक कान्फ्रेंस में गया था। शाम को हर की पौड़ी में गंगा आरती के समय हजारों जोड़े गंगा नदी में दीपक प्रवाहित करते है। यह बड़ा मनोरम दृश्य होता है। जिन पत्तों के पतल–दोने बनते हैं उन्हीं पत्तों के दोनों पर जलते हुए दीपक रखकर गंगा भैया में प्रवाहित करते हैं। जब हम दोनों ने अपने अपने दीपक प्रवाहित किये तो हमने देखा कि मेरा दीपक काफी दूर तक जलता रहा और बहता रहा लेकिन छाया का दीपक शीघ्र ही एक–दूसरे दीपक से टकराकर उलट गया और डूब गया। डूबते हुए दीपक को देख कर छाया बोली जैन साहब, मुझे लगता है, मैं बहुत जल्दी दुनिया से विदा हो जाउगी और हो सकता है, मेरी किसी दुर्घटना में मृत्यु हो जाऐ क्योंकि मेरा दीपक, दूसरे दीपक से टकराकर उलट गया है।

दूसरी घटना और भी रोचक है। वर्ष 2015 के जून माह की घटना है। एक दिन जब मै युनिवर्सिटी से लौटा तो देखा कि छाया एक बहुत बड़ी दरी (जाजम) बाजार से खरीद कर लाई है। मैने कहा कि इतनी बड़ी दरी की कहां जरूरत थी। उसने कहा जैन सा शादी, ब्याह या किसी की मृत्यु के अवसर पर ऐसी बड़ी दरियों की जरूरत पड़ती है।

इस घटना के चार माह बाद छाया का देहावसान हो गया और उसी दरी को उस अवसर पर पहली बार बिछाया गया।

कुछ दिनों बाद प्रतीक दुबई से लौट आया। उसका बी.टेक. पूरा हो चुका था। छाया के निधन के एक वर्ष बाद 29 नवम्बर 2016 को मेरी माताजी का भी जयपुर में निधन हो गया। जिन्दगी की हर छोटी बड़ी घटना आपके लिए एक नया सन्देश लेकर आती है। हर नया दिन आपके रिश्तों को नये ढ़ंग से परिभाषित करता है और ऐसा ही माताजी के निधन के समय हुआ। सभी कार्य सम्पन्न होने के बाद, अन्तिम दिन मेरी बहिन कल्पना और भानजा मेरे पास आये और एक टाइप किया हुआ कागज मुझे दिखाया और कहा ''ये मम्मी की वसीयत है और इसमें मम्मी लिख कर दे गई है कि सारी जमा राशि और मकान के बेचने से जो भी पैसा आया है उस पर सारा अधिकार कल्पना का है।'' मैंने उस वसीयत को पूरा पढ़े बिना ही कह दिया कोई बात नहीं। पापा मम्मी का कमाया हुआ पैसा है वो चाहे जिस तरह उपयोग करे मुझे कोई परेशानी नहीं है। ना तो मैने कोई हिसाब पूछा ना ही मुझे कोई मानसिक क्लेष हुआ। आज भी बहिन और उसके परिवार के साथ मेरे प्रगाढ़ सम्बन्ध हैं। मेरे दोनों भानजे रोहित और अंकित मेरे हर कार्य में मेरे साथ खड़े नज़र आते हैं। जब कभी पैसे या प्रापर्टी का मसला आ जाये तभी सम्बन्धों की असली परीक्षा होती है, चाहे वह कितना ही समृद्ध परिवार हो। इसी बीच प्रतीक को 2016 में अपना एम.बी.ए. कोर्स ज्वाइन करना था लेकिन मम्मी के निधन की वजह से वो अपने आपको सामान्य महसूस नहीं कर पा रहा था इसलिऐ उस वर्ष उसने ड्रॉप करने का मानस बना लिया। अगले वर्ष 2017 में उसका एम.बी.ए में प्रवेश निरमा युनिवर्सिटी में हो गया और जुलाई में उसका सत्र चालू हो गया और वो भी गांधीनगर चला गया। प्रतीक के जाने के बाद घर में मैं अकेला रह गया और मेरे साथ था शैबी। मैने उसी दिन शाम को हमारे फैमिली गुप में मैंने एक व्हाटसएप मैसेज दिया जिसमें मैने लिखा ''छाया दूसरी दुनिया में चली गई, प्रज्ञा दूसरे देश (USA) चली गई, प्राची दूसरे शहर चल गई, प्रतीक दूसरे कॉलेज चला गया। मै और शैबी अब अकेले उदयपुर में रह रहे है।''

जून 2017 में सुखाड़िया युनिवर्सिटी से मेरी सेवानिवृति हो गई। विश्वविद्यालयों की कार्य संस्कृति का एक सुन्दर पक्ष यह भी है कि जब

आप सेवानिवृत हो रहे होते हैं उसमें पहिले ही सारी औपचारिकताओं पूरी कर ली जाती है ताकि सेवानिवृति के समय आपको विश्वविद्यालय द्वारा देय सारे भुगतान किये जा सके। मेरी सेवानिवृति वाले दिन मेरी ग्रेच्युटी, लीव एन्केशलेंट, प्रोविडेंट फण्ड, कम्यूटेशन, एरियर इत्यादि सारे भुगतान कर दिये गये और मेरा पेन्शन पे आर्डर भी दे दिया गया। सेवानिवृति का समारोह पूर्ण कर जब मै साथियों के साथ घर आया तो घर पर प्रज्ञा, व प्रतीक दोनों उपस्थित थे, साथ में मेरे चाचाजी एवं चाचीजी (सन्तोष चाचाजी) भी उपस्थित थे। उस समय मुझे देखकर उनकी आंखे नम हो गई। शायद छाया की कमी उन्हें महसूस हो रही थी। लेकिन बच्चों के सामने मैने अपने आप को भावनात्मकरूप से हमेशा मजबूत बनाये रखा है। चाहे कितनी भी समस्याएँ हो, परेशानियां हो या छाया के जाने के बाद का समय हो, उन्होंने मुझे मानसिकरूप से स्वस्थ एवं मुस्कुराते हुए ही पाया है।

सुखाड़िया विश्वविद्यालय से विदाई लेते ही मैने औपचारिकरूप से गीतांजली इन्स्टीट्यूट, उदयपुर से ही एम.बी.ए. प्रोग्राम के निदेशक केरूप में 1 अगस्त 2017 को कार्यभार सम्हाल लिया। गीतांजली इन्स्टीट्यूट को ज्वाइन करने के पीछे मेरा किसी तरह का वित्तीय प्रलोभन नहीं था और ना ही मैने वेतन को लेकर कोई बातचीत की। क्लास में जाना, छात्रों के साथ संवाद करना मेरा शुरू से ही जुनून रहा है और इसी को पूरा करने के लिए मैंने गीतांजली ग्रुप को ज्वाइन किया। गीतांजली ग्रुप के प्रोमोटर श्री जे.पी. अग्रवाल सा. छाया के स्कूल जीवन के सहपाठी रहे हैं और उसी सम्बन्ध को आज तक निभा रहे हैं। आज के समय में ऐसे व्यक्तियों का मिलना बड़ा दुर्लभ संयोग होता है। मुझे सेवानिवृत हुए करीब 10 वर्ष हुए है लेकिन आज भी मैं प्रतिदिन मेरे विषय की क्लास ले रहा हूँ। मै मानता हूँ कि मै बोलता हूँ इसलिए जिन्दा हूँ, दुनिया गूंगों का इतिहास नहीं लिखती। दूसरे शब्दों में मरने के बाद व्यक्ति बोलता नहीं, सोचता नहीं है। यानि बिना बोले, बिना सोचे व्यक्ति मर जाता है।

जब मैं क्लास में सिगमंड फ्रायड पर बोलता हूँ या पावलोव, कार्ल जुंग, लियो टालस्टाय या ओशों पर अपने विचार रखता हूँ और जब पूरी क्लास ध्यान से सुनती है तो मै जीवन के सुखद क्षणों को जी रहा होता हूँ। जब मैं क्लास से बाहर निकलता हूँ और मेरे छात्र जब भरपूर

प्यार के साथ मुझे खडे होकर क्लास से विदा कर रहे होते हैं तो मुझे ऐसा लगता है मेरे खुशनुमा जीवन में एक घण्टे की बढोतरी हो गई। जब किसी बड़े आडिटोरियम में श्रोता मेरे वाक्यों पर तालियां बजाते हैं तो ऐसा एहसास होता है कि मैं किसी के दिल में उतर रहा हूँ। जीवन यात्रा में प्रत्येक व्यक्ति को कभी सावन की हरियाली का अहसास होता है तो कभी गर्म रेत में जेठ के महीने बिताने जैसा मंजर लगता है। प्रख्यात कवि डॉ. उदयप्रताप सिंह की ये पंक्तियां मुझे जिन्दगी की वास्तविकता का दर्शन करवाती है।

हुप्रा सफर का यही तजुर्बा, वो रेल का हो या हो जिन्दगी का
मिला कहीं भी हसीन मंजर वो पलक झपकते गुजर गया है

वर्ष 2018 आते आते मैं जीवन की दूसरी पारी (रिटायरमैंट के बाद की स्थिति) में सहज हो रहा हूँ, प्रतीक का निरमा युनिवर्सिटी का एक वर्ष अचछी तरह से गुजर चुका है। मैं अपने छोटे से फार्म हाउस पर बैठा हुआ बिल क्लिटन की पुस्तक 'माईलाइफ' पढ रहा हूं तभी सुबह करीब 9.30 बजे सिएटल (यू.एस.) से प्रज्ञा का फोन आता है। कहती है पापा ''प्राची की मैरिड़ लाइफ अच्छी नहीं चल रही है, वो काफी तनाव में जी रही है। ये सब पिछले दो वर्ष से चल रहा है लेकिन आपको हमने नहीं बताया क्यों कि हम आपको परेशानी नहीं देना चाहते थे, लेकिन अब पानी सिर के उपर से निकल रहा है। आप कुछ कीजिए'' ये बानगी है उस क्षण की जो आपकी दुनिया अचानक बदल देता और ऐसा क्षण कभी भी दबे पांव आपके पास आ जायेगा। मैं बिना देर किये प्राची से बात करता हूँ। स्थिति की गंभीरता को समझने की कोशिश कर रहा हूँ। प्राची को इस बात का भरोसा दिलाता हूँ कि बच्चों के मुश्किल के क्षणों में एक पिता की क्या भूमिका होते है यह मैं समझता हूँ और इस स्थिति का समाधान निकल आयेगा।

जब भी बच्चों के साथ विशेषकर बेटियों के साथ किसी तरह की वैवाहिक जीवन से संबंधित समस्या आ जाये तो बेटी का भविष्य पूर्णरूप से सुरक्षित हो जाऐ ऐसा कदम सबसे पहले मॉ–बाप को उठा लेना चाहिए। ऐसी सुरक्षा उसमें मानसिक तनाव को कम करने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाती है।

मैं तत्काल एक निर्णय लेता हूँ कि मुझे गुडगांव में ही एक फ्लैट खरीद लेना चाहिए जिससे प्राची के आवास की समस्या हमेशा के लिए समाप्त हो जाये। प्रतीक भी मेरी बात का समर्थन करता है और 2019 में गुडगांव में एक फ्लैट खरीदने का एग्रीमेंट हो जाता है। इसी वर्ष 2019 में प्रतीक का एम.बी.ए कोर्स भी पूरा हो गया और उसने नौकरी भी ज्वाइन कर ली। प्रतीक के नौकरी ज्वाइन करने की मुझे अत्यधिक खुशी हुई क्योंकि तीनों भाई बहिनों में उसका ही कैरियर सैट होना रह गया था। उसका कैम्पस प्लेसमैन्ट भी SBI Life जैसी अच्छी कम्पनी में हो गया था लेकिन फिर भी मेरा दिल प्राची की समस्या की तरफ बार–बार चला जाता था।

इसी बीच मुझे जानकारी हो गई कि प्रज्ञा वापस माँ बनने वाली है इसलिए मैने इस अवसर पर अमरीका जाने का कार्यक्रम बना लिया और 8 अप्रेल 2019 को दो माह के लिए मै सिएटल के लिए रवाना हो गया। प्रस्थान करने से पहिले एक अच्छी खासी सामानों की लिस्ट प्रज्ञा ने मुझे लिखवा दी थी जो कि मुझे साथ लेकर जाना था। प्रज्ञा जब भी यहां से सिएटल जाती है, जबर्दस्त सामान की अटैचियां भरकर ले जाती है और वजन करने वाली मशीन पर पहले उन अटैचियों का वजन करती रहती है। अगर एक किलो वजन की भी गुजाइश है तो उसमे एक किलो वजन और डालेगी लेकिन अटेची खाली नहीं जायेगी। यह स्थिति मैंने कमोबेश सभी उन भारतीयों को देखी है जो भारत से अमरीका के लिए उडान भरते है। चाहे उनकी आय करोड़ों रूपये में है लेकिन ये आदत नहीं छूटती है।

उसकी एक प्रमुख वजह है क्रय शक्ति समानता का सिद्धान्त ये सिद्धान्त ये बताता है कि अगर अमरीका में एक व्यक्ति की सालना आय 2 लाख डालर है तो भारतीय विनीमय दर के हिसाब से 1 डालर = 100रूपये हुए, तो उसकी आय भारत के हिसाब से तो 2 लाख x 100 = 2 करोड़रूपये हुई लेकिन भारत में 2 लाखरूपये सालाना आय यू.एस के 2 लाख डालर के बराबर ही होगी क्योंकि भारत में 2 लाखरूपये में जो सामान या सेवाएं आप खरीद सकते है उसी सामान के यू.एस में अपको 2 लाख डालर देने पडेगे। इसीलिए अधिकांश भारतीय सारे काम भी खुद हाथ से करते पायेंगे। घर पर ही हाथ

से एक दूसरे के बाल काट देंगे क्योकि हेयर कटिंग की रेट न्यूनतम 100 डालर है जबकि भारत में 100रूपये है। अगर खाना बनाने वाला कोई हैल्पर आपने रखा है तो न्यूनतम 40 डालर प्रति घण्टा लेगा। इसलिए सप्ताह में एक या दो बार ऐसे हेल्पर को लोग बुलाते है, चार, पांच दिन का आटा एक साथ मल कर फ्रिज में रखवा देते है। तीन–चार दिन की सब्जियां भी तैयार करवा कर रख देंगे। असली समस्या उन लोगों की है जो अमरीका घूमने जाते है और अपने परिवार वालों के साथ ठहर रहे हैं। जब वो मेहमान अपने परिवार या मेजबान को घर में सुबह से शाम तक कमरतोड़ काम करते देखता है तो शर्म से उसे भी मेजबान के साथ घर का काम करवाना पड़ता है भले ही भारत में वो राजशाही जिन्दगी जी रहा है और उसके घर पर काम करने वालों की लम्बी चौडी फौज है।

हाँ घूमने फिरने के लिए यू. एस. एम अच्छा देश है। साफ–सुथरा देश, अच्छे संस्कारी लोग, कहीं भी प्रदूषण नहीं मिलेगा, खाने–पीने की चीजों में मिलावट की गुंजाइश नहीं है। उसकी भी वजह है भारत की एक तिहाई आबादी और भारत का चारगुना क्षेत्रफल है। यू.एस. के पास जनसंख्या का घनत्व कम होने से देश का प्रशासन ज्यादा बेहतर ढग से चल पाता है। इसी वजह से शान्ति से सभी क्रियाऐं सम्पन्न हो रही है। बड़े–बड़े शापिंग मॉल है लेकिन शोर बिल्कुल नहीं है। लाखों गाडियां सड़क पर चल रही है लेकिन हॉर्न की आवाज तक नहीं हैं। हजारो लोग अपने पालतू कुत्ते लेकर–घूम रहे हैं लेकिन कुत्तों के भौकनें की आवाज नहीं है। बड़े–बड़े पब्लिक पार्क हैं लेकिन असामाजिक तत्व नाम की कोई चीज नहीं है। जहां प्रज्ञा का घर है उसी के बिल्कुल पास सड़क से सीढ़ियां चढकर एक पब्लिक पार्क में रास्ता जाता है उस पब्लिक पार्क में उपर जाकर मैं नीचे सड़क पर देखता हूँ बड़ा मनोहारी दृश्य है। नीचे आठ लाइनों वाला हाइवे है जो यू.एस से वैकूंवर (कनाड़ा) जा रहा है। उस हाइवे पर हर रोज हजारों गाड़िया जाती है। 140 कि.मी. की स्पीड़ से जा रही है लेकिन कोई हॉर्न नहीं, कोई ओवर टैकिंग नही। मैं कई बार घण्टों तक खडे रहकर उस दृश्य को निहारता रहता था। मैं फिर कह रहा हूँ कि घूमने फिरने के लिए अच्छा देश है लेकिन जिन्दगी इतनी सहज नहीं है

जितनी कि भारत में है। इसीलिए एक बार मैने जाकर दूसरी बार जाने का विचार फिलहाल छोड़ दिया है।

प्रज्ञा की छोटी बेटी दीवा का जन्म 10 मई 2019 को सिएटल में हुआ। मैने हास्पीटल व अन्य सुविधाओं को बहुत बारीकी से देखा। बहुत सुन्दर लम्बा, चौडा अस्पताल लेकिन भीड–भाड़ बिल्कुल नहीं। सामाजिक सुरक्षा के नाम पर भारी टैक्स सरकार लेती है लेकिन उतनी ही सुन्दर व अच्छी स्वास्थ्य व आधारभूत सेवाऐं भी नागरिकों को मिल रही है।

# 10.
# वो भयानक दौर

कभी–कभी एक ऐसा अवसर आता है जब आप गवाह बनते हैं एक ऐसी त्रासदी, प्रकोप या महामारी के जो शताब्दी या कई शताब्दियों में एक बार अपना भीषणतमरूप दिखाती है। ऐसारूप जिसके सामने सारी इन्सानी ताकत, तकनीक, विज्ञान सब कुछ बौने नजर आते हैं। रोजमर्रा के अर्थशास्त्रीय शब्द जैसे बैंक रेट, जी.डी.पी., सेन्सेक्स, औद्योगिक उत्पादन सब कुछ अपना वजूद खोते नजर आते हैं। इस पुस्तक के कई पाठक उस त्रासदी कोरोना महामारी के गवाह बने हैं और वो भाग्यशाली भी हैं क्यों कि उस त्रासदी से वो जीवित बच कर निकले हैं और इस पुस्तक को पढ़ रहे है। आपको होना प्रकृति का सबसे बड़ा उपहार है। कोरोना की पहली और दूसरी लहर को मैंने, देश और दुनिया की जनता ने अच्छी तरह से देखा। उस काल में मैंने भी अपने सगे सम्बन्धियों में से कई को दुनिया से विदा होते देखा है। सम्पूर्ण देश में लॉकडाउन। सड़के सूनी, हवाई अड्डे सूने, बाजार बन्द, स्कूल कॉलेज बन्द। बड़े–बड़े सूरमाओं को अन्तिम संस्कार भी ढंग से नसीब नहीं हो पाया। उसी कोरोना काल में जनवरी 2021 में प्राची का भी विधिवत तलाक हो गया और दोनों की सहमति से, सम्मानजनक तरीके से सभी कार्य सम्पन्न हो गया। शीत युद्ध और सुलगती हुई संधियों से बेहतर है कि मसला हमेशा के लिए हल हो जाये। साहिर लुधियानवी के शब्दों में

वो अफसाना जिसे अंजाम तक पहुंचाना न हो मुमकिन
उसे एक खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना बेहतर

तलाक का फैसला सुनने के बाद महिला जज ने प्राची से पूछा क्या आपको एलीमनी की राशि भी चाहिए? इस पर प्राची ने स्पष्टरूप से ना कर दिया।

प्राची के पहले असफल वैवाहिक जीवन के अनुभव ने पिता होने के नाते मुझे भी बहुत कुछ सिखाया, एक गहरा अनुभव दिया। वैवाहिक जीवन में हम जिस अनुकुलता (Compatibility) की बात करते है या Alignment की बात करते हैं, जरूरी नहीं है कि ऐसी अनुकुलता या Alignment जीवन पर्यन्त बना रहे। तमाम प्रयासों के बाद भी कभी–कभी कुछ सम्बन्ध अपनी चमक खोने लगते है या उनमें क्षरण (Corrosion) होने लगता है। किसी को क्षमा कर देना या सहन कर लेना एक बाम की तरह से है जिससे कुछ गलत फहमी या निराशा या छोटे घाव का इलाज हो सकता है। कभी–कभी ये अहंकार को भी समाप्त कर देता है। लेकिन जब सम्बन्ध विषाक्त (toxic) होने लगे तब सम्बन्ध अत्यधिक नाजुक दौर से गुजरने लगते हैं एसी स्थिति में किसी के साथ रहना, पुरानी चीजों को भूलना बिल्कुल ऐसा है जैसे किसी ऐसी बाल्टी में पानी भरना जिसमें पहले से छेद है। ऐसी स्थिति में सहन करना एक धीमा जहर होता है जिसे आप जीवन पर्यन्त पीते रहते हैं।

जीवन में आप कई तरह के इन्वैस्टमेंन्ट (investment) करते रहते हैः शिक्षा में, कैरियर बनाने में, मित्रता में, विवाह में लेकिन आपके सभी इन्वेस्टमेन्ट सही निकले, आवश्यक नहीं है। मैं मैनेजमेन्ट का प्रोफेसर हूँ और देखता हूँ कि षेयर मार्केट में जब इन्वैस्टर पैसा लगाते है; तो कई बार गिरते हुए शेयर मार्केट में भी वो खरीद करते है जिसे वो averaging down कहते है, जिसका मुख्य उद्देश्य शेयर मार्केट में पहले हुए नुकसान को कम करना या कुछ हद तक उसकी भरपाई करना होता है लेकिन वैवाहिक जीवन में ऐसा नहीं होता। इसे इस तरह से भी समझा जा सकता है कि गिरते हुए चाकू को अगर आप पकड़ने या थामने का प्रयास करेंगे तो आपके हाथों से खून बहने लगेगा। विषाक्त वैवाहिक सम्बन्ध (toxic relationship) उपर से गिरते हुए चाकू की तरह से ही है जिसको पकड़ने का अर्थ हाथों में खून बहाना है और व्यर्थ में किसी जादू की कल्पना करना है।

किसी सम्बन्ध से निकलना दर्दनाक (painful) होता है, उसकी अपनी कीमत हैः भावनात्मक उथल पुथल, साधनों का बटवारा, सामाजिक मान्यताऐं लेकिन हमें यह भी समझना चाहिए कि ऐसी स्थिति में दोनों पक्ष एक युद्ध के मैदान (Battlefield) में होते हैं और

इसमें किसी के जीतने की कल्पना करना व्यर्थ है क्योंकि बदले की भावना दोनों को ही जीतने नहीं देती है।

ऐसी स्थिति में विषाक्त सम्बन्ध से बाहर निकलना अपने–आप में दोनों के लिए ''स्वतंत्रता'' का उपहार है। जिस तरह सर्जरी, शरीर में किसी व्याधि को समाप्त कर देता है उसी तरह विषाक्त सम्बन्धों से सम्मानजनक तरीके से बाहर निकल जाना उस विष को फैलने से रोकता ही नहीं उसे समाप्त कर देती है।

छोटा सा जीवन एक बेशकीमती उपहार है, जिसे महाकाल भी कहा गया है। इस जीवन को भीतरी संघर्ष और विरोध में गुजार देना, अपने आप का सबसे बड़ा नुकसान करता है। दुनिया आपको खुशियाँ, अवसर और खुले मैदान आगे बढ़ने के लिए दे रही है लेकिन इस भीतरी संघर्ष के चलते हम कुछ देख नहीं पाते। अत्यधिक सहनशक्ति कोई ऐसा मॉडल नहीं है बल्कि एक जंजीर है जो आपको आगे नहीं बढ़ने देती।

ऐसी स्थिति में आगे बढ़ने का क्या रास्ता हो सकता है? वित प्रबंध में ''नुकसान को कम करना'' मेडिकल साइन्स में 'सर्जरी' और सम्बधों में सम्मानजनक तरीके से निकलना।'' सम्बन्ध से बाहर निकलने को असफलता समझने की गलती न करते हुए यह मानना चाहिए कुछ इन्वैस्टमेन्ट अच्छा रिटर्न नहीं दे रहे हो तो उन्हें समय रहते पोर्टफोलियो से बाहर निकलना ही समझदारी है। बाहर निकलना किसी अध्याय की समाप्ति नही बल्कि एक नये अध्याय की शुरुआत होती है। स्वस्थ सम्बन्धों में सहनशीलता आपको स्वतंत्रता देती है लेकिन विषाक्त सम्बन्धों में आपका अस्तित्व दांव पर लग जाता है। दोनों ही स्थितियां प्रेम को बढ़ाने वाली होती है। प्रथम स्थिति में दूसरे पक्ष के लिए प्रेम बढ़ता है जब कि दूसरी स्थिति में आपका अपने प्रति प्रेम बढ़ता है। कुल मिला कर प्यार एक अमूल्य उपहार है जिसे नाली में व्यर्थ नहीं बहाना चाहिऐ।

अप्रैल 1921 में गुडगांव में नूतन गृह प्रवेश के कार्यक्रम से लौटने के बाद मुझे भी कोरोना हो गया। तीन दिन तक मैं घर पर ही रहा। कोरोना टैस्ट करवाया गया तो पोजीटिव आ गया। अगले दिन से ऑक्सीजन का स्तर गिरना चालू हो गया। ऐसी स्थिति में कई विकट

समस्याऐं थी जो कि सारी जनता को परेशान कर रही थी। पहली किसी भी अस्पताल में कोई बैड खाली नहीं था। दूसरी आक्सीजन सिलिण्डर की भारी किल्लत चला रही थी और बिना आक्सीजन सिलिण्डर के जिन्दगी बचाना एक बहुत बड़ी समस्या थी। कमोवेश यह स्थिति उदयपुर की ही नहीं पूरे देश की थी। तीसरी समस्या मृत्यु के बाद शवदाह ग्रहों में भी लम्बी चौड़ी लाइने लग रही थी और अन्तिम समस्या अस्पतालों में कोरोना की कोई भी विशेष दवा डॉक्टरों के पास नहीं थी। केवल रैमडेसिविर इन्जैक्शन लगा रहे थे, लेकिन उसकी भी पूरे देश में भारी किल्लत चल रही थी। सौलह सोरूपये का इन्जैशन पच्चीस और तीस हजार में बिक रहा था। इस स्थिति को स्पष्ट करने के पीछे एक ही मकसद है कि पाठक यह जान सके कि किस विभिषिका को इस देष ने उस समय झेला है। यही स्थिति पूरे विश्व की थी। हर दिन हजारों लोग मर रहे थे, जो लोग अस्पतालों में भर्ती हो रहे थे उनका पता नहीं था जिन्दा वापस लौटेंगे या सीधे शमशान ही जायेंगे। जिन्हें कोरोना हो गया था उन्हें पूरी तरह से आइसोलेशन में रखा जा रहा था। सूनसान सड़कों पर केवल एम्बुलेंस के साइरन सुनाई देते थे। उन एम्बुलैंस में या तो कोरोना का गंभीर मरीज अस्पताल जा रहा होता था या किसी मरीज की लाश अस्पताल से शमशान गृह जा रही होती थी। शमशान गृहों में लकड़ियों की कभी हो गई। उत्तर प्रदेश में तो लोग गंगा या यमुना नदी में लाशों को बहाने लग गये थे क्योंकि अंत्येष्टी की सही जगह व सुविधा नहीं मिल रही थी। सरकार, प्रशासन और जनता सब मूक दर्शक बनकर इस त्रासदी को झेल रहे थे।

उस समय प्राची गुडगांव से उदयपुर आ चुकी थी और प्रतीक पहले से यही था। हम तीनों कोरोना की चपेट में आ गये और तीनों घर पर अलग–अलग कमरों में कैद थे। मेरी तबियत चुंकी ज्यादा खराब थी अतः बड़ी मुश्किल से घर के पास पारस अस्पताल में पलंग खाली होने की सूचना पर मुझे भर्ती करवाने प्राची व प्रतीक साथ आये। जब तक हम अस्पताल पहुंचे पता लगा कि पलंग किसी दूसरे मरीज को दिया जा चुका है। तभी एक जूनियर नर्सिंग स्टाफ ने कहा सर थोड़ी देर इन्तजार कर लीजिए किसी न किसी मरीज की मृत्यु हो ही जायेगी तब पलंग खाली हो जायेगा। स्टाफ का यह वाक्य उस

त्रासदी की भयानकता बताने के लिए काफी है और ये त्रासदी या घटना कोई 300–400 साल पुरानी नहीं बल्कि वर्ष 2020–21 की है।

करीब एक घण्टे की प्रतीक्षा के बाद अस्पताल में पलंग खाली हो गया और मेरा बुलावा आ गया। मेरा वार्ड तीसरी मंजिल पर था और वहाँ पर मरीज के अलावा किसी का भी प्रवेश वर्जित था। प्रतीक और प्राची ने मुझे नीचे से ही विदाई दे दी। ये विदाई भी अजीब थी क्योंकि उस समय अस्पताल में भर्ती होने का मतलब यह गारन्टी नहीं थी कि मरीज ठीक होकर ही लौटेगा। उसकी लाश भी आ सकती है। इसीलिए जब मैं अस्पताल के अन्दर जा रहा था तो प्रतीक व प्राची दोनों की आँखों में आंसू थे। मेरी उम्र उस समय 65 वर्ष हो चुकी थी और उस उम्र के जितने भी लोग कोरोना से ग्रसित होकर अस्पताल में भर्ती हुए थे उनमें से 5ः लोग ही स्वस्थ होकर घर लौटे थे।

मुझे मरीजों को ले जाने वाली ट्राइ साइकिल में बैठा कर ऊपर तीसरी मंजिल पर ले जाया गया। वो पूरी मंजिल कोरोना रोगियों को समर्पित थी। वर्क स्टेशन पर तीन लोगों की नर्सिंग स्टाफ था। पूरी मंजिल पर मौत की खामोशी थी और उसका साया भी दिख रहा था। मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने डैथ वारंट पर स्वयं ही हस्ताक्षर करने आ गया हूँ। मुझे कमरे में रखा गया उसमें पहले से एक कोरोना मरीज और था। बिस्तर पर लिटाते ही नर्सिंग स्टाफ का व्यक्ति आया और उसने ड्रिप चालू कर दी। उसने मुझे बधाई दी और कहा सर बधाई आपको बैड मिल गया। पूरे उदयपुर शहर में किसी भी अस्पताल में खाली बैड नहीं है इस बैड पर अभी कुछ देर पहले ही एक मरीज की मृत्यु हो गई थी। आपकी सिफारिश थी इसलिये ये बैड आपको मिल गया। मेरी सारी बुद्धिमानी और संवादशैली शुन्य हो गई थी। मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं कैसे जवाब दूं। थोडी देर बार एक जूनियर डॉक्टर आया और उसने कहा ‘‘सर यहाँ आक्सीजन की सप्लाई सीमित है, यहाँ क्या पूरे उदयपुर में आक्सीजन सीलिंडर बहुत कम हैं। अगर आपको जरूरत पडी तो हम थोड़ी देर ही आक्सीजन दे पायेंगे। मुझे उस पल ऐसा लग रहा था जैसे मुझे ईश्वर ने अस्पताल में नही हिटलर के में बनाये नाजी कैम्प में भेज दिया है जहाँ से जिन्दा बच निकलने का कोई जरिया नहीं है। कभी–कभी ऐसे क्षण आते है जब आपकी सारी दुनिया बदल जाती है। आपको सोच, आपका चिन्तन

ज्ञात, अज्ञात आशंकाओं से घिरने लगता है, आपके अस्तित्व का संघर्ष आपको किसी दूसरी बात के बारे में सोचने का मौका ही नहीं देता। मैं अस्पताल में हूँ और प्राची और प्रतीक दोनों ही घर पर है और वो भी कोरोना पोजीटिव है और अलग–अलग कमरों में सो रहे है। घर पर काम करने लोग भी नहीं आ रहे है। थोड़ी देर में डॉक्टर अपने एक जूनियर के साथ आते है। वो मुँह पर बड़ा मास्क, पूरा गाउन, आंखों पर काला चश्मा, हाथों में दस्ताने सब कुछ जुगाड़ कर के आया है, मुझे ऐसा लग रहा है ये डॉक्टर है या यमदूत। डॉक्टर मुझे कह रहा है कि मेरा आक्सीजन लैवल 80 के आस–पास चल रहा है जो ठीक नहीं है, हम हमारी तरफ से पूरा प्रयास कर रहे है। उसी समय मुझे नीरज की गजल की एक लाइन याद आती हैः

ऐसे भी लम्हे आये है अपने जीवन में
बीच जिन्दगी और मौत के सिर्फ फासला था मुडेर का

दो घण्टे बाद मेरे पास वापस डॉक्टर आते हैं साथ में 6 रेमडेसवीयर इन्जैक्शन लाते हैं और हर एक इन्जैक्षन के पैकेट पर वे मुझे हस्ताक्षर करने को कहते है। मैं उनसे पूछता हूँ ये हस्ताक्षर क्यों करवाये जा रहो है, जवाब में डॉक्टर कहते हैं किसी भी रोगी की मृत्यु हो जाने के बाद उसके परिजन हंगामा करते है कि रोगी का सही इलाज नहीं किया गया, इसलिये इन्जेक्शन के हर पैक पर आपके हस्ताक्षर करवाये जा रहे है। मुझे यह सब देखकर लग रहा है कि डॉक्टर मेरे लोक और परलोक दोनों की व्यवस्था ठीक करने में लगे हैं। इन सब के बीच प्राची और प्रतीक के फोन आते रहते है और बार–बार वो पूछते है ''डॉक्टर क्या कह रहे है?'' मैं एक छोटा सा जवाब देता हूँ कि सब ठीक चल रहा है।

इन सबके बीच मैं पड़ोस वाले बैड पर लेटे रोगी की स्थिति भी देखता रहता हूँ। उसकी उम्र 40 से नीचे ही होगी। नीमच से यहाँ आया है। ये उसका कोरोना का दूसरा अटैक है। पिछले 2 घण्टे से उसे आक्सीजन सपोर्ट पर रखा जा रहा है। अच्छा सुन्दर चेहरा है, षरीर से भी मजबूत दिखाई दे रहा है। ऐसा लगा रहा है लम्बे समय से जिम में तराशी हुई बॉडी है। लेकिन महामारी बॉडी, पैसा, प्रभाव, खूबसूरती कुछ भी नहीं देखती बल्कि आपको अहसास करवा देती है

कि ये सारी चीजें महामारी के सामने कहीं नहीं ठहरती। मैंने देखा वो मुझसे बात करना चाह रहा है। मैंने आगे होकर ही पूछ लिया ''कहाँ से आये हो भइया'' बड़ी मुश्किल से बोल पाया मैं नीमच से आया हूँ अंकल। भरी हुई आंखों से बोल रहा है पिताजी की मृत्यु भी करीब 20 दिन पहले कोरोना की वजह से हो गई। मेरा आक्सीजन लैवल बहुत कम हो गया है, आपको क्या लगता है अंकल ? मैं बच जाउंगा'' मैं उसे दिलासा देते हुए कहता हूँ बेटा ईश्वर सब अच्छा करेगा, इस तरह घबराओ मत। उसकी सांस बहुत तेज चल रही है, थोडी देर बाद उसकी पत्नि का फोन आता है अस्पताल के कमरे में कनैक्टिविटी की समस्या है इसलिये वो मोबाइल को स्पीकर पर डाल देता है। मैं भी फोन पर वार्तालाप सुन रहा हूँ। उसकी पत्नि अपने छोटे बच्चे के साथ अस्पाल के नीचे ही एक किराये का कमरा लेकर रह रही है। वो बराबर रोये जा रही है। वह चाहती है एक बार अस्पताल में उपर आकर पति को देख ले बस। लेकिन अस्पताल वाले ऊपर नहीं आने दे रहे है उसे। वो विडियो काल पर बात करने को कहती है लेकिन लड़के की हालत इतनी खराब है कि वो पत्नि को अपना चेहरा नहीं बताना चाहता और वो सिर्फ फोन पर ही बात करता रहता है। पत्नि लड़के से कहती है बस ठीक होकर आ जाओं फिर 10–15 दिन आराम से घूमने चलेंगे, इस साल किट्टू को स्कूल में भी एडमिशन करवाना है। लड़का बड़ी मुश्किल से जवाब दे पा रहा है। पत्नि कहती है तुम्हें नींद आ रहा है, चलो अब सो जाओ। शाम के करीब 6 बजे है लड़के को जोर से खांसी आती है वो वाशरूम में जाता है। वापस आकर बताता है अंकल मुंह में से खून आने लगा है। थोड़ी देर में नर्सिंग स्टाफ से एक व्यक्ति आता है वापस आक्सीजन मास्क उसके मुंह पर लगा दिया जाता है। मैं देख पा रहा हूँ उसके चेहरे पर एक अजीब सी भय की छाया मंडरा रही है। शाम को मुझे प्राची और प्रतीक से भी बात करनी है पर मैं बात करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा हूँ क्योंकि मेरा भी आक्सीजन लेवल 80 से ऊपर नहीं आ पा रहा है। रैमडेसविजर इन्जेक्शन और दूसरी एन्टीबायोटिक दवाईयों ने बॉडी में अजीब सी गरमाहट पैदा कर कर दी है। शाम को करीब 7 बजे मेरे ननिहाल बडी सादड़ी से फोन आता है कि मामसा के बेटे मनोज की कोरोना से मौत हो गई है। मनोज भी उदयपुर के गीताजंली अस्पताल में ही भर्ती था।

मैने उस समय तक अपने परिचितों और रिश्तेदारों के करीब आठ से दस लोगों की मृत्यु को देख चुका था। रात को करीब 9 बजे मैंने खाना खा लिया और सोने की तैयारी कर रहा हूँ। सोने से पहले मैं पड़ौसी को गुड नाइट बोल रहा हूँ वो भी इशारे से गुड नाइट करता है थोड़ा मुस्कुरा भी देता है। फिर वापस से पत्नि से बात करने लगता है। रात के करीब 4 बजे नर्सिंग स्टाफ मेरे पलंग पर आया मेरी ड्रिप बदलने। मेरी नीद खुल गई। मैं पड़ोस वाले पलंग को देखता हूँ जो बिल्कुल खाली है। मैं स्टाफ से पूछता हूँ वो इस पलंग वाला लड़का कहा गया है वो जवाब देता है सर रात के करीब 2 बजे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी बॉडी नीचे रख दी है, उसकी पत्नि आ गई है। मैं हतप्रभ रह जाता हूँ क्यों कि चार घण्टे पहले ही फोन पर मैंने उसकी पत्नि की भी मीठी सी आवाज सुनी थी। उतने करीब से और इतने करीब वाले व्यक्ति की मृत्यु मैं पहली बार देख रहा था। कल्पना के नाम पर खण्ड काव्य और महाकाव्य लिखे जा सकते हैं लेकिन वास्तविकता जिसने देखी है या भोगी है उसके लिए चार लाइने लिखना भी कष्टकर प्रतीत होता है।

करीब दस दिन जिन्दगी की जंग लड़कर सकुशल अस्पताल के बाहर निकलने में मैं कामयाब रहा। डॉक्टरों के अनुसार मैं इसलिये वापस स्वस्थ होकर लौट चुका क्यों कि मुझे ब्लड प्रेशर, शुगर या थायराइड जैसी कोई दूसरी बिमारी नहीं थी। व्यक्ति का स्वास्थ्य उसकी सबसे बड़ी सम्पदा होता है यह बात कोरोना काल ने अच्छी तरह से सिद्ध कर दी लेकिन ऐसी बातों को हम बहुत जल्दी भूल जाते है। शार्ट कट और कम्फर्ट जोन (Comfort Zone) हमें इतने अच्छे लगते है कि कभी–कभी पूरी जिन्दगी दांव पर लगाने में भी परहेज नहीं करते। कई लोग कंचन जैसी काया को कोयला बनाने में अपनी पूरी उर्जा लगा देते है।

प्राची के वैवाहिक जीवन के अलगाव के करीब एक वर्ष बाद उसने मुझ से एक दिन फोन पर अपनी एक नई मित्रता (प्रणय असीम) के बारे में बताया और कहा कि ये शुरुआती चरण है लेकिन हम दोनो काफी गंभीरता से एक एक कदम आगे बढ़ रहे है। मैंने इस मुद्दे को पूरी तरह से प्राची पर ही छोड़ दिया और उससे कहा ''मुझे तुम्हारे विवेक पर पूरा भरोसा है और मैं चाहता हूँ तुम पूरी तरह से सोच

विचार कर निर्णय लो।'' बच्चों की एक उम्र आ जाने के बाद हमें उनकी विवेकशीलता और निर्णय क्षमता पर भरोसा करना सीख लेना चाहिए। प्राची ने मुझ से कहा कि अपने पापा, मम्मी को विवाह के लिए मनाने का जिम्मा प्रणय ने अपने उपर ले लिया है और आपको मनाने का जिम्मा मैंने लिया है। मेरी तरफ से तो मैं पहले ही स्वीकृति दे चुका था, अब प्रणय के पापा मम्मी की ही बारी थी जिसका कि प्राची और मैं इन्तजार कर रहे थे। छाया के देहान्त के बाद तीनों बच्चों के लिए पापा, मम्मी दोनों का रोल मैं ही कर रहा था क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि जिन्दगी के महत्त्वपूर्ण अवसरों पर बच्चे मम्मी की कमी इसलिए महसूस करें कि अब उनके लिए सोचने वाली मम्मी नहीं रही। करीब चार माह के बाद प्राची का फोन आया कि प्रणय के पापा, मम्मी मान गये हैं और वो जल्दी ही आपसे बात करेंगे। जब प्राची का फोन आया तो प्रणय के प्रति मेरा प्यार और सम्मान इसलिये बढ़ गया कि अपने पापा, मम्मी को मनाने का जो वादा उसने प्राची से किया था उसे पूरी गंभीरता से निभाया और पूरा किया। कुछ ही दिनों के बाद प्रणय के पापा जी का फोन आ गया था और काफी अच्छे तरीके से बातचीत हुई। कुछ ही दिनों के बाद मेरा गुडगांव जाना हुआ और उनके पूरे परिवार से मिलने का अवसर मिला। प्रणय का पूरा परिवार बड़ा ही शालीन और गरिमामय लगा। जैसा मुझे प्राची ने बताया और मैंने भी महसूस किया कि ये लोग किसी के अतीत ने बिल्कुल नहीं झांकते सिर्फ वर्तमान को अच्छी तरह से जीने में विश्वास करते है। मेरे दिल में उन लोगों के प्रति सम्मान और बढ़ गया जब प्राची के पहले वाले असफल वैवाहिक जीवन की सारी बात जानते हुए भी उन्होंने प्राची को स्वीकार किया और असीम प्यार दिया। दुनिया में लाखों लोग है जो उपदेश देने में पारंगत है, आदर्षों की दुहाई कदम–कदम पर देंगे लेकिन जब उनके परिवार का या स्वयं का मसला आता हे तो वो सारे आदर्श एक तरफ किनारे पर धर दिये जाते हैं। दूसरी बात जिसने मुझे कुछ नया सोचने पर मजबूर किया वो थी प्रणय के पिताजी भी असीम जी का वो कथन जब उन्होंने कहा कि ये प्रणय और प्राची की शादी है इसलिये सारा काम उनकी इच्छा से और उनकी खुशी के हिसाब से ही होना चाहिए। इसीलिये शादी का हर एक कार्य प्रणय और प्राची ने अपने तरीके से अपनी खुशी के हिसाब से किया क्यों कि

प्रणय का परिवार नोईडा में रहता है इसलिए उन्होंने ग्रेटर नोईडा का ही एक बहुत सुन्दर क्लब है स्टैलर जिमखाना जिसे विवाह के लिए बुक कर लिया था। हम लोग भी वही चले गये थे और 14 दिसम्बर 2022 को प्रणय और प्राची का विवाह सम्पन्न हो गया। कभी–कभी जीवन में किसी कार्य के नहीं होने की वजह से हम इतने परेशान हो जाते है कि ऐसा लगता है जीवन व्यर्थ हो चला है लेकिन हर कार्य के होने का समय नियत है। सिर्फ पूरे प्रयास करते रहिये और धैर्य के साथ उस क्षण का इन्तिजार करते रहिये।

# 11.
# संध्याकाल का वन्दन

एक पर्वतारोही के जब पहाड़ की एक चोटीं को फतह करता है तो फिर उसे एक दूसरी नई ऊँची चोटी नजर आने लगती है। उसको भी फतह कर लेता है तो फिर एक और चोटी नजर आने लगती है। फिर उसे माउन्ट एवरेस्ट नजर आता है। जब माउन्ट एवरेस्ट फतह हो जाता है तो दुनिया की सातों बड़ी चोटियों को छूने की उसकी इच्छा जागृत हो जाती है। ये एक अनवरत क्रम है जिसे एक अच्छा पर्वतारोही पूरी निष्ठा के साथ पूरा करने में अपनी पूरी ऊर्जा और जीवन लगा देता है। जीवन यात्रा में भी यही सतत प्रक्रिया चलती रहती है। स्व. हरिवशंराय बच्चन ने अपनी एक कविता में कहा।

*कल जिस जगह पर था मै खड़ा हुआ, उस पर आज नहीं हूँ।*
*कल इसी जगह पर फिर पाना मुझको मुश्किल है।*

प्राची के विवाह के आस–पास ही प्रतीक ने अपना जॉब बदल लिया। कोरोनाकाल से कुछ पहले उसने अपने पुराने जॉब SBI Life में जयपुर से उदयपुर अपना ट्रांसफर करवा लिया था और 2020 से 2022 तक वो उदयपुर ही रहा। हम दोनों के लिए वो अच्छा समय था। इसी बीच वो अपना जॉब बदलने के लिए प्रयास भी करता रहा और फिर उसको मुंबई में दूसरा जॉब मिल गया। विश्व की सबसे बड़ी इन्श्योरेन्स ब्रोकिंग कम्पनी ''मार्श' में उसने कार्यभार सम्हाल लिया। प्रतीक ने अभी तक गांधीनगर, जयपुर, उदयपुर जैसे शहरों में अपना समय गुजारा था जो काफी शान्त शहर हैं, भीडभाड नहीं है। जब एक व्यक्ति अपनी उम्र के करीब 30 वर्ष ऐसे छोटे शहरों में गुजार दे फिर उसे मुंबई जैसा महानगर कम ही रास आता है। यही स्थिति मैंने प्रतीक की देखी। मुंबई जॉब ज्वाइन करने के बाद जब भी उदयपुर आया मैंने उसे उदास देखा। बातचीत में भी उसने इस बात को स्वीकार किया कि वो मुंबई में सहज नहीं हो पा रहा है। लेकिन हमेशा मैने उसका हौसला बनाये रखा और यही समझाया कि ये एक

स्वाभाविक प्रक्रिया है और धीरे–धीरे तुम मुंबई के जीवन के अभ्यस्त हो जाओगे। और वहीं हुआ भी। धीरे–धीरे मुंबई की जिन्दगी में सहज हो गया और उसकी जॉब परफोरमेन्स भी काफी सराही जाने लगी। प्राची ने भी विवाह के बाद अपनी पुरानी कम्पनी S&P Global में एक नये प्रोजेक्ट में ज्वाइन कर लिया और वो आज एक काफी अच्छी पोजीशन में कार्य कर रही है। प्रणय जी ने विवाह के बाद KPMG जैसी प्रतिष्ठित कम्पनी को ज्वाइन किया और एक दिन प्राचीन ने मुझे सुबह फोन किया कि प्रणय ने BCG (Boston Consulting Group) ज्वाइन कर लिया है। मैं स्वयं मैनेजमेन्ट का प्रोफेसर हूँ इसलिये इन कम्पनियों के बारे में अच्छी जानकारी रखता हूँ। मुझे इस बात की सबसे ज्यादा खुशी होती है कि मेरी दोनों बेटियां, दोनों दामाद और बेटा अपने क्षेत्र की विश्व की टॉप रेटिंग कम्पनियों में काम कर रहे है। बड़े दामाद सुमन्त जी अमरीका में विश्व की सबसे बड़ी IT कम्पनी माइक्रोसोफ्ट में काम कर रहे है, बडी–बेटी प्रज्ञा वाशिंगटन यूनिवर्सिटी में कार्यरत है, छोटी बेटी प्राची विश्व की सबसे बड़ी रेटिंग एजेन्सी S&P Global में कार्यरत है और छोटे दामाद प्रणय जी विश्व की सबसे बड़ी कन्सलटिंग कम्पनी BCG में कार्यरत है तो प्रतीक विश्व की सबसे बडी इन्श्योरेस ब्रोकिंग कम्पनी मार्श में कार्यरत है।

जैसा मैंने शुरू में कहा पर्वतारोही का एक चोटी पर चढने के बाद दूसरी नई ऊंची चोटी पर चढने का विचार आता है। प्राची के विवाह के बाद 2023 के शुरू से ही मैं प्रतीक के विवाह के बारे में गंभीरता से सोचने लगा। हाँ, मैं सोचने लगा था लेकिन चिन्ता का भाव कभी नहीं रहा। प्राची के वैवाहिक अनुभव ने मुझे कई नई चीजें सिखाई जिन्हें मैं जीवन के अनुभव के खजाने में एक डायमंड की तरह मानता हूँ।

सबसे बड़ी बात है आप बच्चों के विवाह के बारे में कभी अपनी चिन्ता बच्चों के सामने व्यक्त न करे क्योंकि यह भी एक तरह का मानसिक दबाव ही होता है, जिसकी वजह से कई बार बच्चा माँ–बाप को खुश करने की वजह से विवाह नहीं एक समझौता कर लेता है। मैंने कई परिवारों में देखा कि बेटे या बेटी की उम्र 24–25 वर्ष होते ही माँ–बाप की सांस फूलने लगती है और दिन में कई बार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से बेटे–बेटी को अपना संदेश देते रहते है। विवाह एक निजी व्यक्तिगत मामला है और आप बच्चों की निजता का सम्मान

करना सीखिये। प्रतीक ने कई लड़कियां देखी जिसमें मेरे प्रयास छिपे थे लेकिन मैने प्रतीक को स्पष्ट कह दिया कि तुम जिस लड़की के बारे में हरी झण्डी दोगे उसी मामले में मैं आगे बढ़ूंगा और मुझे सूचित करना तुम्हारा काम है। कई बार नजदीकी रिश्तेदार मुझे इस तरह से समझाने लगते थे कि अगर प्रतीक ने जल्दी विवाह नहीं किया तो शायद दुनिया उलट–पुलट हो जायेगी। लेकिन मैंने मन में ठान रखा था कि जब प्रतीक की इच्छा होगी तो विवाह कर लेगा और अगर उसकी विवाह करने की इच्छा नहीं है तो भी मैं उसकी इच्छा का सम्मान करूंगा।

मैं इस बात का भी पक्षधर हूँ कि विवाह के पहले बच्चे जितना मिलना चाहें और जिस तरह मिलना चाहें उन्हें पूरी आजादी दीजिए। मैं लिव–इन रिलेशन का भी पक्षधर इसलिए हूँ कि समाज में 25% से भी अधिक विवाह इसलिए असफल हो रहे है कि उनकी शयनकक्ष की जिन्दगी सफल नहीं रही है। यह 2015 के एक सर्वे की रिपोर्ट है जिसे Alpha one Endrology नामक ग्रुप ने किया है। मैं पिछले 50 वर्षों से देश के युवा वर्ग के साथ सक्रियरूप से जुड़ा हुआ हूँ, उनकी धडकनों को सुन रहा हूँ और वो युवा मुझसे खुलकर चर्चा भी करते है।

विवाहित जोडों की काउन्सलिंग भी मैंने की है उसी आधार पर मै यह बात करने का साहस कर रहा हूँ।

मैं मई 2025 के अन्तिम सप्ताह में शाम के समय घर पर बैठ कर चाय पी रहा हूँ और बिना किसी मकसद के प्रतीक को फोन करता हूँ। इधर–उधर की बात करने के बाद प्रतीक कहता है ''पापा मैंने काफी लडकियां देखी है लेकिन मुझे चित्तौड वाली लड़की ही पसन्द है जो कि करीब एक वर्ष पहले मैने देखी थी। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कौन सी लड़की की बात कर रहा है, वैसे सभी लड़कियों के बायोडेटा उसे मैंने ही भेजे थे। मुझे उस समय न तो लड़की का चेहरा याद आ रहा था ना ही बायोडेटा। मैंने प्रतीक से कहा मुझे बायोडेटा वापस भेज दो और अगले ही मिनट में उसने वापस बायोडेटा और फोटो भेज दिया। मैं फोटों को पहचान लेता हूँ और उससे अगला प्रश्न करता हूं कि क्या इस लड़की की अभी तक शादी नहीं हुई है, और जवाब में प्रतीक करता है ''नहीं हुई है।'' और इस तरह से प्रतीक का वैवाहिक सर्च आपरेशन पूरा हुआ 'निष्ठा' से मिलकर। 5 जुलाई 2025 को प्रतीक का 'रोका समारोह' चितौड़गढ़ में सम्पन्न हुआ और 27 फरवरी 2026 को उसका विवाह निष्ठा के साथ सम्पन्न हुआ। निष्ठा भी मुंबई में ही कार्यरत है और एक इवेंट कम्पनी में कॉरपोरेट इवेन्टस को देखती है। मैं जब भी निष्ठा से बात करता हूँ तो लगता है प्रतीक की पसंद अच्छी है। निष्ठा की कुशल संवाद शैली को देखता हूँ, उसके ठहराव को देखता हूँ, प्रतीक और निष्ठा की कैमिस्ट्री को देखता हूँ तो मैं आने वाले समय के प्रति आश्वस्त हो जाता हूँ क्योंकि मेरा आने वाला भविष्य मैं उन दोनों में देखता हूँ।

वर्ष 2023 में ही मुझे अपना समय और अधिक रचनात्मक ढंग से गुजारने के लिए एक जगह मिल गई जो मेरे घर के बिल्कुल नजदीक है जिसका नाम है Third Space। बहुत ही सुन्दर स्थान जहाँ मुझे बड़ा सुकुन मिलता है। आपका पहला स्पेस आपका घर है, दूसरा स्पेस आपका ऑफिस है और तीसरा स्पेस (Third Space) जहाँ आप अच्छा समय गुजार सकते है। यह एक शानदार खुली ग्रीन स्पेस है। जहॉ शानदार लाइब्रेरी है, पुस्तकों का बहुमूल्य संग्रहण है, कॉफी हाउस है, थियेटर है, कान्फ्रेंर्सरूम है। उदयपुर में ही एक कारपोटेट हाउस हैः सिक्योर मीटर्स, उनका ही लगाया गया पौधा हैं। संभवतः देश में ये

अपने ढंग का अनूठा प्रयोग है। Third Space की लाइब्रेरी में बैठकर हर दिन एक से दो घण्टे गुजारता हूँ। चाय की थर्मस साथ हो किसी एक किताब पर आपकी आंख जमी हो और पढते–पढते आपके दिल और दिमाग में हलचल हो रही हो उससे ज्यादा सुखद पल जिन्दगी में क्या हो सकता है? ज्यों ही Third space की मैम्बरशिप खुली, मैं पहला व्यक्ति था जिसने वार्षिक सदस्यता ली।

मेरे मस्तिष्क में बार–बार ये प्रश्न उठता है कि अगर उदयपुर का एक कारपोरेट हाउस Third space केरूप में शहर और समाज को और उसकी भावी पीढ़ी को इतना शानदार उपहार दे सकता है तो दूसरे कारपोरेट हाउस ऐसा क्यों नहीं सोच सकते?

दूसरी जगह जहां मेरा सुबह और शाम का समय शानदार गुजरता है वो है मेरा छोटा सा फार्म हाउस। घर से मात्र 1 कि.मी. की दूरी पर एक 6000 स्क्वायर फीट के एक प्लाट को मैंने फार्म हाउस में तब्दील कर लिया है। सुबह की चाय मैं वही पीता हूँ। सुबह–सुबह छोटे–छोटे पेड़ों से चिडियाओं के चहकनें की आवाज, घूमते हुए छोटे–छोटे नेवले और गिलहरियां, गार्डन में काम करते बागवान जी गेगीलाल जी और इन सब के बीच अखबार पढना और चाय की चुस्कियां लेना, एक मधुर संगीत का अनुभव करवाता है। शाम को भी करीब एक घण्टा वहीं जाकर पेड़–पौधों को पानी पिलाना और गीली मिट्टी की सौंधी महक को महसूस करना आपको दुनिया के शीर्ष पर होने का अहसास करवाता है।

इसी दौर में मेरा प्रतिदिन गीतांजली इन्स्टीट्यूट जाने का कार्यक्रम बदस्तूर जारी रहा। प्रतिदिन छात्रों से कक्षा में मिलना और विषय पर एक घण्टे की क्लास लेना और पूरी तैयारी के साथ क्लास लेना मेरी दिनचर्या का एक भाग हो गया है।

इस इन्स्टीट्यूट में कार्य करते हुए करीब दस वर्ष का समय हो गया है मुझे, लेकिन ऐसा लगता है कि कल की ही बात है जब मैं मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय से सेवानिवृत होकर इस जगह पर आया था। मानसिकरूप से ये स्थान मुझे काफी सुकून देता है जिसकी सबसे बड़ी वजह है मेरे साथ काम करने वाली फैकल्टी। कुछ संकाय सदस्य तो मेरे पूर्व छात्र/छात्राऐं रहे है, साथ ही बाकी संकाय सदस्य

भी काफी सहज और परिश्रमी हैं। मैं कई बार सोचता हूँ कि यहां कई संकाय सदस्य हर दृष्टि से सरकारी विश्वविद्यालयों में कार्यरत संकाय सदस्यों से कई गुना बेहतर है।

संस्थान का रोजमर्रा का काम देखने के लिए नियुक्त श्री बी.एल. जांगीड और आइ.टी. सेल के इन्चार्ज चिन्तल पटेल और मेरे विभाग के सभी संकाय सदस्यः ये सब लोग मिलकर मेरा पूरा दिन खुशनुमा रखते है। इन सबसे उपर एक बात है कि आप किसी भी संस्थान में हैं या किसी भी ग्रुप के साथ जुड़े हों, उसको जज करना छोड़ दीजिए। जब आप जज करना शुरू करते हैं तब आपको असन्तोष उत्पन्न होता है। प्रयास यही होना चाहिए कि जो भी संगठन आपको मिला है उसको आप अच्छा संगठन मानकर अपना 100% योगदान देते रहें।

पिछले दस वर्षों में यानि छाया के देहावसान के बाद धीरे–धीरे ही सही लेकिन एकाकी जीवन जीने का अभ्यस्त हो गया हूँ। तीनों बच्चों प्रज्ञा, प्राची और प्रतीक से दिन में एक बार बात हो जाती है और अब निष्ठा से भी हर दिन बात हो जाती है। प्रज्ञा और प्राची की पारिवारिक जिन्दगी अच्छी तरह चल रही है और प्रतीक का भी वैवाहिक जीवन अच्छा चल रहा है।

तीनों बच्चें अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में खुश है, यह देखकर मेरी खुशी बढ जाती है। तीनो मेरी हर इच्छा का सम्मान कर लेते है और हमारे बीच संवाद और सम्बन्ध मधुर है, यह ईश्वर की कृपा मानता हूँ।

मेरी एक शोध छात्रा रही है क्षमा शर्मा; वर्तमान में वह अहमदाबाद में जे.जी. युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है, उसने मुझसे कहा Sir, You are living the best part of your life' मैंने उससे कहा कि जीवन का हर क्षण अच्छा ही होता है अगर हम उसे अच्छा बना लें। अपनी युवा अवस्था से ही मैंने चिन्तन के स्तर पर अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखी। कभी किसी वाद, पंथ, गुरु और मजहब की सीमाओं में अपने आप को कैद नहीं किया। हर जगह और हर पंथ या हर वाद में कुछ अच्छा हो रहा होगा उसे समझने का साहस कर लेना चाहिए। ना मैने किसी का अनुयायी बनने का प्रयास किया क्योंकि जरूरत है आपको अपने भीतर जाने की, ना कि किसी का झण्डा उठाने की। किसी भी महापुरुष को अच्छे से समझने का प्रयास करना ज्यादा आवश्यक है, बजाय इसके कि आप उसे पूजने लग जाऐं।

उम्र के इस पड़ाव पर आकर और आंखों के सामने तकनीकी, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्तियों के विभिन्नरूप देखकर मेरी यह धारणा बलवती और पक्की हो गई कि समय बदलता है और कोई भी चीज शाश्वत नहीं रहती। और इसी के साथ सभ्यताओं के पुराने बंधन, कटघरे औररूढियां टूटती है। मनुष्य की विचार यात्रा इनका अतिक्रमण करती है और एक नये धरातल पर पहुंचती है। किसी समय स्थापित व्यवस्थाऐं जिन नये विचारों को खारिज या प्रतिबंधित कर देती है, वो ही कालान्तर में उन्हें स्वीकारने के लिए विवश हो जाती है। एक सच्चा बौद्धिक और विचारक अपने समय की स्थापित सत्ताओं ओर शक्ति केन्द्रों के वर्चस्व और स्वार्थ को चुनौती दिये बिना नहीं रह सकता। बदले में उसे अकेलापन, अपमान, तिरस्कार और कारावास का दण्ड भी भोगना पड़ता है। उसके बाद एक लम्बे समय के बाद उसी निर्वासित और तिरस्कृत व्यक्ति को युगपुरुष, प्रज्ञा पुरुष और शिखर पुरुष जैसे सम्बोधनों से जमाना नवाजता है।

मैं हमेशा, हर दिन ये प्रयास करता हूँ कि मेरा आज कल से बेहतर हो। उधार का लिया हुआ चिन्तन मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। मेरा चिन्तन प्रचलित मान्यताओं और विश्वास पर खरा उतरता है या नहीं इस बात की परवाह मैंने कभी नहीं की। अगर आप लीक पर ही चल रहे है, उन्हीं आडंबरों यारूढ़ियों को स्वीकार कर रहे हैं या उसी धारा में बह रहे है तो फिर कोई बड़ा काम नहीं कर रहे हैं। पैसा कमाना या कागज की डिग्रिया लेकर बैठ जाना आपकी महत्वपूर्ण उपलब्धी का

मापक नहीं है। अब फर्क सिर्फ इतना पडा है कि चिन्तन के साथ–साथ भौतिक स्तर पर भी मैं स्वतंत्र महसूस करता हूँ। यह सही है कि घर का ताला मैं ही खोलता हूँ और मैं ही बन्द करता हूँ लेकिन इसकी भी स्वतंत्रता है, जब चाहूँ ताला बन्द करू, जब चाहूँ खोलूं।

इस दौरान मैंने कई प्रयोग व कई अनुभव लिए जो मुझे हल्का फुल्का तथा नकारात्मकता से दूर रखते हैं।

करीब पिछले 25 वर्षों से मैंने बेहतरीन भारतीय तथा पश्चिमी लेखकों को पढा जिन्होंने मेरे सोचने, जीने और व्यवहार करने के ढंग को बदल कर रख दिया है। देश और समाज को आज सबसे अधिक जरूरत ऐसे लोगों की है जो कुछ नया सोच सकें कुछ नूतन चिन्तन समाज को दे सकें। करोडोंरूपये के पैकेज पाने वाले लोग पूरी जिन्दगी तीन लाइन का नया चिन्तन समाज या व्यवस्था को नहीं दे पा रहे है। आज इस देश को अच्छे साहित्यकारों की जरूरत है, अच्छे नाट्यकर्मियों की जरूरत है, अच्छे आन्दोलनकारियों की जरूरत है, अच्छे क्रान्तिकारियों की जरूरत है। लेकिन हम सिर्फ अच्छे वेतन और पैकेंज पाने वाले औसत दर्जे के नागरिकों की भीड़ खड़ी कर रहे हैं। यह इस वक्त की सबसे बड़ी त्रासदी है। अच्छे स्तर का मानसिक चिन्तन एक स्वस्थ मस्तिष्क के लिए पहली जरूरत है। चिन्तन और सोच ब्रेन में नये–नये न्यूरोन पैदा करता है जो आपके मस्तिष्क की शक्ति को बनाये रखने में सहायक होते है। बढती उम्र के साथ तो और भी जरूरी है कि आप नया कुछ सोचें या सोचते रहें जिससे आप मस्तिष्क से सजग रह सके। जब हम मस्तिष्क से काम लेना बन्द कर देते है तो याददाश्त कमजोर होना या एलजाइमर जैसी बिमारियाँ बहुत जल्दी आती है।

मैं कई ऐसी विभूतियों को जानता हूँ जिन्होंने अपने कार्य के प्रति सक्रियता एक लम्बे अर्से तक नहीं छोड़ी। प्रख्यात जर्नलिस्ट श्री खुशवन्त सिंह 90 वर्ष की उम्र तक बराबर पत्र–पत्रिकाओं में लिखते रहे। डा. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम राष्ट्रपति पद से सेवानिवृत होने के बाद वापस अध्यापन के कार्य में व्यस्त हो गये, उनके जीवन का अन्तिम क्षण भी शिलांग में IIM की कक्षा में ही बीता। मुझे सरकारी विश्वविद्यालय से सेवानिवृत हुए दस वर्ष पूरे हो चुके हैं लेकिन एक क्षण के लिए भी मुझे इस बात का अहसास नहीं हुआ कि मैं सेवानिवृत हो गया हूँ। यह सब इसलिए संभव हो रहा है कि ये मेरा जुनून है।

जब कोई कार्य आपका शौक या जुनून बनता है तो फिर वो भार नहीं लगता। मुझे एक छोटी सी कहानी बड़ी अच्छी लगती हैः एक पहाड़ पर एक साधु जिसकी पीठ पर धर्म ग्रन्थों का बोझ लदा हुआ था, चढ़ रहा था, उसी के साथ–साथ एक छोटी 11 साल की बच्ची भी पहाड़ पर चढ़ रही थी। उसकी पीठ पर 2 साल का छोटा भाई बैठा था। थोड़ी देर चलने के बाद साधु ने बच्ची से कहाः बेटा तुम्हे काफी भार लग रहा होगा पीठ पर भाई का वजन लेकर चल रही हो। बच्ची ने पलटकर कहा बाबाजी वजन तो आपको अपने धर्मग्रंथों का लग रहा होगा, ये तो मेरा भाई है, भाई का क्या वजन लगेगा। जिन्दगी का सारा खेल आपके चिन्तन से शुरू होकर चिन्तन पर ही समाप्त हो जाता है। मैं हमेशा हर पल अपने चिन्तन भी क्वालिटी को नापता तोलता रहता हूँ और देखता हूँ कि कहीं वो गलत या नकारात्मक दिशा में तो नहीं जा रहा है।

मैंने कई बार सुबह–सुबह सूरज को निकलते हुए देखा है, रात को टिमटिमाते तारे और पूनम का चांद देखा है। सिर्फ देखा ही नहीं, देखती तो पूरी दुनिया है लेकिन इन खगोलीय घटनाओं ने मुझे बहुत बड़ा पाठ सिखा दिया कि इस दुनिया में जितनी भी महान घटनाऐं हो रही है बिना किसी शोर शराबे के हो रही है। रोज रात को तारे निकल रहे हैं कितनी महान घटना हो रही है, रोज सुबह सूरज निकल रहा है कितनी महान घटना हो रही है, पृथ्वी अपनी धूरी पर चक्कर लगा रही है। ये सारी बड़ी महान घटनाऐं हैं। कल्पना कीजिऐ कि आज रात पचास या सौ वर्ष बाद तारे आसमान में दिखेंगे तो आप सड़कों पर दौड़ पड़ेगे तारे देखने के लिए। आज मान लिजिए पचास वर्षों बाद सूरज निकलेगा तो लोग दौड पडेंगे सूरज को देखने के लिए, मीडिया के लोग, खगोलशास्त्री सभी अपने अपने कैमरे लेकर दौड़ पडेंगे इस महान घटना को कवर करने के लिए। ये सारे आश्चर्य और महान क्रियाऐं चुपचाप, बिना किसी शोर के, बिना किसी दिखावे के हर दिन हमारे आसपास घट रही है और एक हम लोग है कि बिना बात के पूरी जिन्दगी शोर शराबे, क्रोध, प्रतिशोध में जल कर निकाल रहे है। इसीलिऐ दर्शनशास्त्र में अवलोकन (observation) पर बड़ा जोर दिया गया है। आप किस तरह से चीजों या घटनाओं को देखते हैं वही जिन्दगी का सबसे बड़ा सबक और सबब होता है।

मेरा एक अनुभव रहा है कि हम अपने आप से यह प्रश्न भी पूछें कि हम जिस काल खण्ड में जी रहे हैं क्या उस कालखण्ड के साथ न्याय कर पा रहे हैं या नही? या दूसरे शब्दों में आप जिस पद पर, जिस स्थिति में, जिस कार्यक्षेत्र में काम कर रहे हैं वहां पर आपका क्या ऐसा योगदान है जिसे आने वाली पीढ़ियां एक बड़े या महत्वपूर्ण योगदान केरूप में याद कर पायेगी?

मैं स्वयं शीशे में अपना चेहरा देखता हूँ तो एक प्रश्न अपने आप से पूछता हूँ कि क्या मैं अच्छा पिता बन पाया? क्या मैं अच्छा शिक्षक बन पाया? मुझे बराक ओबामा का वो कथन बार–बार याद आता है जो उन्होंने अपनी आत्मकथा में भी लिखा है कि राष्ट्रपिता बनने के पहले आपको परिवार में अच्छा पिता बनकर दिखाना पड़ेगा। इन सब के लिए जरूरी शर्त यह है कि आप अपने उपर काम करें। आप अपने उपर खर्च करें। जो अपने उपर खर्च करते हैं बाद में लोग उनको गूगल पर सर्च करते है। सिर्फ ऊँचाइयां चढना ही महत्वपूर्ण नहीं है, बिना गहराई के ऊँचाइयां बेमानी लगने लगती है।

दुंबई के वर्तमान शेख ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसका मैं पूरी तरह समर्थन करता हूँ कि उन्होंने कहा कि एक व्यक्ति कैसा है यह देखना हो तो उसकी मित्र मण्डली को देख लीजिऐ। उन्होंने आगे कहा कि अगर एक कमरे में आप पांच मित्रों के साथ बैठे है और अगर आपको लगता है कि उन सभी मित्रों में आप सबसे ज्यादा होशियार हैं तो उस कमरे को तुरन्त छोड दीजिए क्योंकि अब उस कमरे में या उन मित्रों के पास आपके सीखने के लिए कुछ नहीं बचा है। आपकी मित्र मण्डली जानकारी के आधार पर जितनी व्यापक होगी उतना ही आपका मानसिक स्तर व्यापक होगा। मेरी मित्र मण्डली छोटी ही रही लेकिन उसमें दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, प्रशासनिक सेवा, मैडिकल, इन्डस्ट्री, कविता, लेखन और विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े व्यक्ति रहे जिनकी वजह से मैं हर दिन कुछ नया सीखता रहा हूँ। इसके लिए मैंने एक सीधा सा सूत्र इजाद कर लिया मै जिस किसी भी मित्र के साथ बैठा हूँ उससे उसके क्षेत्र के बारे में एक प्रश्न पूछ लेता हूँ जो मेरी जानकारी में बढोतरी कर सके। पिछले कई वर्षो से मेरा यह क्रम निर्बाधरूप से चल रहा है। प्रख्यात मोटिवेशनल स्पीकर रॉबिन शर्मा के शब्दों में जलते हुए दीये अपने आसपास रखिये जो दुनिया को रोशन करने के साथ–साथ आपको भी रोशन करेंगे।

हम जब भी किसी सरकारी या किसी अर्द्धसरकारी संगठन में किसी पद पर पहुंचते हैं तो सारी शक्ति, सारी ऊर्जा इस बात पर लगा देते है कि इससे ऊंचे पद पर कैसे पहुंचा जाये, जब उस ऊंचे पद पर पहुंच जाते है तो फिर सारी शक्ति लगाते है उससे भी ऊंचे पद पर पहुंचने के लिए। ये क्रम 60 वर्षों की उम्र तक चलता रहता है। मैं कई मित्रों को कहता हूँ कि 60 वर्ष के रिटायरमैन्ट के बाद भी एक लम्बी उम्र आपको निकालनी है उसकी भी प्लानिग मनौवैज्ञानिक रूप से कर डालिऐ अन्यथा आप और आपकी पत्नि दोनों ही पुराने दिनों को याद करके सिसकते रहेंगे। मुझे इस समय दो घटनाऐं याद आ रही हैं। पहलीः मेरे विश्वविद्यालय में एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे जिनकी डयूटी कुलपति के कमरे के बाहर स्टूल पर बैठने की लगी रहती थी। कई वर्षों तक मैंने उन्हें उसी ड्यूटी में देखा। कुछ वर्ष पूर्व वो कुलपति सेवानिवृत हो गये और वो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी भी सेवानिवृत हो गये। अब दोनों ही व्यक्ति पेंशनर्स सोसायटी के सदस्य हैं और पूर्व कुलपति और पूर्व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी दोनों ही जब पेशनर्स सोसायटी की मीटिंग में आते है तो दोनों एक जैसी प्लास्टिक की कुर्सी पर पास–पास बैठे रहते है। यह दृश्य जब मैंने कई बार देखा तो मुन्नवर राणा का वो कथन मुझे याद आया कि ''ऊँचाइया जिन्दगी में हमेशा साथ नहीं रहती'' जब आप ऊंचाई पर हो तो इस कथन को हमेशा ज्रहन में रखिये। दूसरी घटना और भी रोचक है। मैं माउन्ट आबू में कुछ वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाषण दे रहा था तभी एक पुलिस अधिकारी ने एक जोरदार टिप्पणी की और कहा'' सर हम पुलिस अधिकारी रिटायरमैन्ट के बाद ज्यादा जी नहीं पाते'' मैंने पूछा ये निष्कर्ष आपने कैसे निकाला तो उनका जवाब चौंकाने वाला था। उन्होंने कहाः जब हम सक्रिय सेवा में रहते हुए ऊंचे पद पर पहुंच जाते हैं तो हमारे ठाठ–बाट निराले हो जाते है। गेट के बाहर एक टेन्ट लग जाता है उस टैन्ट में दो सन्तरी रहते हैं जो बारी–बारी से गेट पर निगरानी करते रहते है। घर में काम करने के लिए जवान रहते है। कपड़ों के प्रेस से लगाकर जूतों की पालिश तक सारे काम देश के जवान करते रहते है। सुबह से शाम तक कई महत्वपूर्ण व्यक्ति घर पर और ऑफिस में मिलते रहते है। घर के सारे काम चुटकियों में हो जाते हैं और धीरे–धीरे एक दिन आ जाता है अपके रिटायरमैन्ट का। पूरी तरह सजधज कर व्यक्ति 10 बजे ऑफिस पहुंच जाता है। जोरदार विदाई कार्यक्रम, भाषण माला, आपकी गाडी

फूलों से सजा दी गई है, सारे अधिकारियों और कर्मचारियों से हाथ मिलाकर आप गाड़ी में बैठ गये हैं, कुछ कदम तक सभी साथी आपकी गाड़ी को रस्सियों से बांधकर खींच रहे है। कितना मनोहर दृश्य है। जब ऑफिस से भव्य विदाई लेकर व्यक्ति घर पहुंचता है तो देखता है कि बाहर गेट की चौकदारी कर रहे जवान जा चुके हैं। घर पहुँच कर पत्नि से कहता है ''रामू से कहो चाय बना दे'' पत्नि कहती है रामू को तो आपके जाते ही ऑफिस बुला लिया है उसकी ड्यूटी दूसरी जगह लग गई है। अब उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने भी आना–जाना बन्द कर दिया है जो सुबह और शाम को आपके घर की शोभा बढाते थे। अब पत्नि का सब्र का बांध टूटने लगता है, पति को ताने मारते हुए कहती है'' कहां गया तुम्हारा रौब? कहां गये तुम्हारे सम्पर्क वाले वी.आई. पी? कहां गई वो तुम्हारी फोन की घंटियां जो बन्द होने का नाम नहीं लेती थी? धीरे–धीरे इन तानों की संख्या और आवाज बढने लगती है और वो पुलिस अधिकारी इन सब को सहन नहीं कर पाता और जल्दी ही या यू कहें समय से पहले ही संसार से विदा हो जाता है।

कहने का सार यह है कि सहजता और सरलता से जीवन को जीने का प्रयास करना एक बड़ी उपलब्धि होती है और मैं स्वयं भी इस सिद्धान्त का पालन करने का प्रयास करता हूँ। इस संदर्भ में महाकवि नीरज दो के गीत की दो पक्तियां मुझे बहुत सुन्दर लगती हैः

जितना कम सामान रहेगा उतना सफर आसान रहेगा।
जितनी भारी गठरी होगी उतना तूं बैचेन रहेगा।

जिन्दगी की आखिरी सांस तक पढना और पढाना मेरा चलता रहे मैं यही कामना ईश्वर से करता हूँ। क्योंकि ये मेरा स्वधर्म है और मैं इस स्वधर्म का पालन पूरी निष्ठा से कर सकूं इसे मैं इस जीवन की सफल यात्रा मानूंगा।

सत्तर वर्ष की उम्र के पडाव को पार कर चुका हूँ, पर उम्र के इस अंक को मैंने कभी अपने मस्तिष्क में हावी नहीं होने दिया। जब कभी किसी समारोह के दौरान लोग मेरी उम्र की चर्चा करते हैं तो मुझे एक शेर याद आता है।

मेरा पानी उतरता देखकर किनारे पे घर मत बना लेना
मै समन्दर हूँ फिर लौट कर आउगा।